हिंदी
17
बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय
गांधी एवं अछूतों का उद्धार

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर

सम्पूर्ण वाङ्मय

खंड–17

बाबासाहेब डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

जन्म : 14 अप्रैल, 1891 परिनिर्वाण 6 दिसंबर, 1956

बाबासाहेब

डॉ. अम्बेडकर

सम्पूर्ण वाङ्मय

खंड 17

डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय

खंड 17

गांधी एवं अछूतों का उद्धार

पहला संस्करण : 2000
दूसरा संस्करण : 2013 (जनवरी)
तीसरा संस्करण : 2013 (फरवरी)
चौथा संस्करण : 2013 (अप्रैल)
पाचवां संस्करण : 2013 (जुलाई)
छठा संस्करण : 2013 (अक्टूबर)
सातवां संस्करण : 2014 (फरवरी)
आठवां संस्करण : 2016
नौवां संस्करण : 2019 (जून)
दसवां संस्करण : 2020 (अगस्त)

ISBN :978-93-5109-166-0

आवरण परिकल्पना : डॉ. देबेन्द्र प्रसाद माझी, पी.एच.डी.

पुस्तक के आवरण पर उपयोग किया गया मोनोग्राम बाबासाहेब डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के लेटरहेड से साभार

ISBN (सेट) : **978-93-5109-149-3**

रियायत नीति के अनुसार सामान्य (पेपरबैक) 1 सेट (खंड 1–40) का मूल्यः रू 1073/-
रियायत नीति (Discount Policy) संलग्न है।

प्रकाशकः
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय,
भारत सरकार
15 जनपथ, नई दिल्ली – 110 001
फोन : 011–23320571
जनसंपर्क अधिकारी फोन : 011–23320588
वेबसाइट :http://drambedkarwritings.gov.in
Email-Id :cwbadaf17@gmail.com

मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स प्रा. लिमि., W-30 ओखला, फेज–2, नई दिल्ली–20

परामर्श सहयोग

डॉ. थावरचन्द गेहलोत
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री भारत सरकार
एवं
अध्यक्ष, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

श्री रामदास अठावले
सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्री

श्री कृष्णपाल गुर्जर
सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्री

श्री रतनलाल कटारिया
सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्री

श्री आर. सुब्रह्मण्यम
सचिव
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय भारत सरकार

सुश्री उपमा श्रीवास्तव
अतिरिक्त सचिव एवं सदस्य सचिव,
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार

डॉ. देबेन्द्र प्रसाद माझी, पी.एच.डी.
निदेशक
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

डॉ. बृजेश कुमार
संयोजक, सी.डब्ल्यू.बी.ए.
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

सकंलन (अंग्रेजी)
श्री वसंत मून

संपादक
श्री ओम प्रकाश कश्यप

अनुवादक
श्री सीताराम खोड़ावाल

पुनरीक्षक
श्री उमराव सिंह

संपादक सहयोग
डॉ. वी.एन. सिंह

डॉ. थावरचन्द गेहलोत
DR. THAAWARCHAND GEHLOT
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री
भारत सरकार
MINISTER OF
SOCIAL JUSTICE AND EMPOWERMENT
GOVERNMENT OF INDIA

कार्यालयः 202, सी विंग, शास्त्री भवन,
नई दिल्ली–110115
Office : 202, 'C' Wing, Shastri Bhawan,
New Delhi-110115
Tel. : 011-23381001, 23381390, Fax : 011-23381902
E-mail : min-sje@nic.in
दूरभाषः 011-23381001, 23381390, फैक्सः 011-23381902
ई-मेलः min-sje@nic.in

संदेश

स्वतंत्र भारत के संविधान के निर्माता बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी बहुआयामी प्रतिभा के धनी थे । बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी एक उत्कृष्ट बुद्धिजीवी, प्रकाण्ड विद्वान, सफल राजनीतिज्ञ, कानूनविद, अर्थशास्त्री और जनप्रिय नायक थे । वे शोषितों, महिलाओं और गरीबों के मुक्तिदाता थे। बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी सामाजिक न्याय के लिये संघर्ष के प्रतीक हैं । बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी ने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी क्षेत्रों में लोकतंत्र की वकालत की । एक मजबूत राष्ट्र के निर्माण में बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी का योगदान अतुलनीय है ।

बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी के लेख एवं भाषण क्रांतिकारी वैचारिकता एवं नैतिकता के दर्शन-सूत्र हैं। भारतीय समाज के साथ-साथ सम्पूर्ण विश्व में जहां कहीं भी विषमतावादी भेदभाव या छुआछूत मौजूद है, ऐसे समस्त समाज को दमन, शोषण तथा अन्याय से मुक्त करने के लिये डॉ. अम्बेडकर जी का दृष्टिकोण और जीवन-संघर्ष एक उज्ज्वल पथ प्रशस्त करता है । समतामूलक, स्वतंत्रता की गरिमा से पूर्ण, बंधुता वाले एक समाज के निर्माण के लिये बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी ने देश की जनता का आह्वान किया था ।
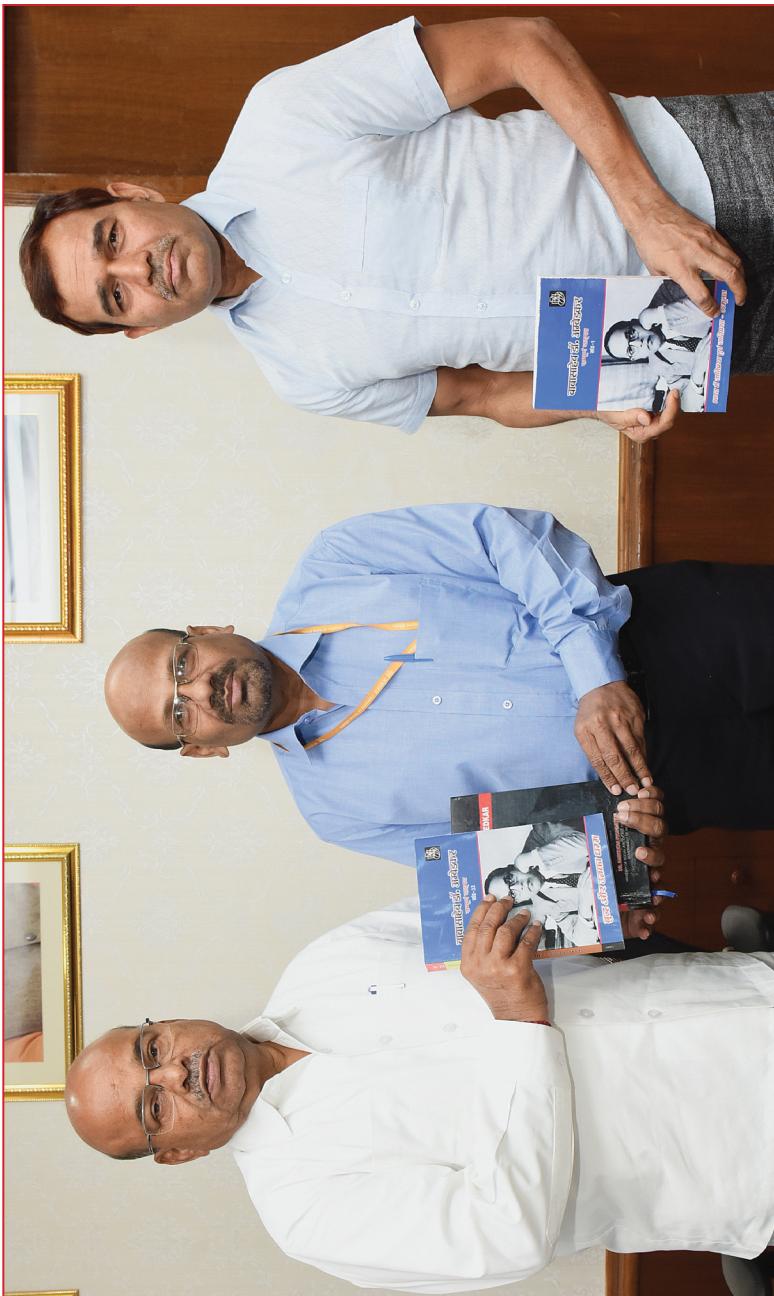
बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी ने अस्पृश्यों, श्रमिकों, महिलाओं और युवाओं को जो महत्वपूर्ण संदेश दिये, वे एक प्रगतिशील राष्ट्र के निर्माण के लिये अनिवार्य दस्तावेज हैं । तत्कालीन विभिन्न विषयों पर डॉ. अम्बेडकर जी का चिंतन-मनन और निष्कर्ष जितना उस समय महत्वपूर्ण था, उससे कहीं अधिक आज प्रासंगिक हो गया है। बाबासाहेब की महत्तर मेधा के आलोक में हम अपने जीवन, समाज राष्ट्र और विश्व को प्रगति की राह पर आगे बढ़ा सकते हैं। समता, बंधुता और न्याय पर आधारित बाबासाहेब डॉ; भीमराव अम्बेडकर जी के स्वप्न का समाज-**"सबका साथ सबका विकास"** की अवधारणा को स्वीकार करके ही प्राप्त किया जा सकता है।

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है, कि सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय का स्वायत्तशासी संस्थान द्वारा, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, **"बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर : सम्पूर्ण वांग्मय"** के खण्ड 1 से 21 तक के संस्करणों को, बाबासाहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर जी के अनुयायियों और देश के आम जन-मानस की मांग को देखते हुये पुनर्मुद्रण किया जा रहा है ।

विद्वान पाठकगण इन खंडों के बारे में हमें अपने अमूल्य सुझाव से अवगत करायेंगे तो हिंदी में अनुदित इन खण्डों के आगामी संस्करणों को और बेहतर बनाने में सहयोग प्राप्त हो सकेगा।

9/7/19

(डॉ. थावरचन्द गेहलोत)

बाबासाहेब अम्बेडकर के सम्पूर्ण वाड्मय (Complete CWBA Vols.) का विमोचन

हिंदी और अंग्रेजी में CWBA / सम्पूर्ण वाड्मय, (Complete Volumes) बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के संग्रहित कार्यों के संपूर्ण खण्ड, डॉ. थावरचंद गेहलोत, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री, और अध्यक्ष, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, भारत सरकार, नई दिल्ली द्वारा जारी किया गया है। साथ ही डॉ. देबेन्द्र प्रसाद माझी, निदेशक, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान और श्री सुरेन्द्र सिंह, सदस्य सचिव भी इस अवसर पर उपस्थित थे। हिंदी के खंड 22 से खंड 40 तक 2019 में पहली बार प्रकाशित हुए है।

उपमा श्रीवास्तव, आई.ए.एस.
अपर सचिव
UPMA SRIVASTAVA, IAS
Additional Secretary

भारत सरकार
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय
शास्त्री भवन, नई दिल्ली-110001
Government of India
Ministry of Social Justice & Empowerment
Shastri Bhawan, New Delhi-110001
Tel. : 011-23383077 Fax : 011-23383956
E-mail : as-sje@nic.in

प्राक्कथन

भारतरत्न डॉ. बी.आर. अम्बेडकर भारतीय सामाजिक–राजनीतिक आंदोलन के ऐसे पुरोधा रहे हैं, जिन्होंने जीवनपर्यंत समाज के आख़िरी पायदान पर संघर्षरत् व्यक्तियों की बेहतरी के लिए कार्य किया। डॉ. अम्बेडकर बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे इसलिए उनके लेखों में विषय की दार्शनिक मीमांसा प्रस्फुटित होती है। बाबासाहेब का चिंतन एवं कार्य समाज को बौद्धिक, आर्थिक एवं राजनैतिक समृद्धि की ओर ले जाने वाला तो है ही, साथ ही मनुष्य को जागरूक मानवीय गरिमा की आध्यात्मिकता से सुसंस्कृत भी करता है।

बाबासाहेब का संपूर्ण जीवन दमन, शोषण और अन्याय के विरुद्ध अनवरत क्रांति की शौर्य–गाथा है। वे एक ऐसा समाज चाहते थे जिसमें वर्ण और जाति का आधार नहीं बल्कि समता व मानवीय गरिमा सर्वोपरि हो और समाज में जन्म, वंश और लिंग के आधार पर किसी प्रकार के भेदभाव की कोई गुंजाइश न हो। समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के प्रति कृतसंकल्प बाबासाहेब का लेखन प्रबुद्ध मेधा का प्रामाणिक दस्तावेज़ है।

भारतीय समाज में व्याप्त विषमतावादी वर्णव्यवस्था से डॉ. अम्बेडकर कई बार टकराए। इस टकराहट से डॉ. अम्बेडकर में ऐसा जज़्बा पैदा हुआ, जिसके कारण उन्होंने समतावादी समाज की संरचना को अपने जीवन का मिशन बना लिया।

समतावादी समाज के निर्माण की प्रतिबद्धता के कारण डॉ. अम्बेडकर ने विभिन्न धर्मों की सामाजिक, धार्मिक व्यवस्था का अध्ययन व तुलनात्मक चिंतन–मनन किया।

मैं प्रतिष्ठान की ओर से माननीय सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री, भारत सरकार का आभार व्यक्त करती हूँ जिनके सद्परामर्श एवं प्रेरणा से प्रतिष्ठान के कार्यों में अपूर्व प्रगति आई है।

उपमा श्रीवास्तव

(उपमा श्रीवास्तव)
अतिरिक्त सचिव
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय,
भारत सरकार, एवं
सदस्य सचिव

प्रस्तावना

बाबासाहेब डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर एक प्रखर व्यक्तित्व, ज्ञान के प्रतीक और भारत के सुपुत्र थे। वह एक सार्वजनिक बौद्धिक, सामाजिक क्रांतिकारी और एक विशाल क्षमता संपन्न विचारक थे। उन्होंने सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों के व्यावहारिक विश्लेषण के साथ–साथ अंतःविषयक दृष्टिकोणों को अपने लेखन और भाषणों के माध्य से प्रभावित किया जो बौद्धिक विषयों और भावनाओं को अभिव्यक्त एवं आंदोलित किया। उनके लेखन में वंचित वर्ग के लोगों के लिए प्रकट न्याय और मुक्ति की गहरी भावना है। उन्होंने न केवल समाज के वंचित वर्गों की स्थितियों को सुधारने के लिए अपना जीवन समर्पित किया, बल्कि समन्वय और 'सामाजिक समरसता' पर उनके विचार राष्ट्रीय प्रयास को प्रेरित करते रहे। उम्मीद है कि ये खंड उनके विचारों को समकालीन प्रासंगिकता प्रदान कर सकते हैं और वर्तमान समय के संदर्भ में डॉ. अम्बेडकर के पुनःपाठ की संभावनाओं को उपस्थित कर सकते हैं।

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, भारत के साथ–साथ विदेशों में भी जनता के बीच बाबासाहेब डॉ. अंबेडकर की विचारधारा और संदेश के प्रचार–प्रसार हेतु स्थापित किया गया है। यह बहुत ख़ुशी की बात है कि सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री के नेतृत्व में प्रतिष्ठान के शासी निकाय के एक निर्णय के परिणामस्वरूप, तथा पाठकों की लोकप्रिय माँग पर डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, बाबासाहेब अम्बेडकर के हिंदी में संपूर्ण वांग्मय (Complete CWBA Volumes) का दूसरा संस्करण पुनर्मुद्रित कर रहा है।

मैं संयोजक, अनुवादकों, पुनरीक्षकों, आदि सभी सहयोगियों, एवं डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान में अपनी सहायक, कुमारी रेनू और लेखापाल, श्री नन्दू शॉ के प्रति आभार प्रकट करता हूँ, जिनकी निष्ठा एवं सतत् प्रयत्न से यह कार्य संपन्न किया जा सका है।

विद्वान एवं पाठकगण इन खंडों के बारे में सुझाव से डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान को उसकी वैधानिक ई–मेल आई.डी. **cwbadaf17@gmail.com** पर अवगत कराएं ताकि, अनुदित इन खंडों के आगामी संस्करणों को और बेहतर बनाने में सहयोग प्राप्त हो सकेगा।

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान हमेशा पाठकों को रियायती कीमत पर खंड उपलब्ध कराने के लिए प्रयास करता रहा है, तदनुसार आगामी संस्करण का भी रियायत नीति (Discount Policy) के साथ बिक्री जारी रखने का निर्णय लिया गया है। अतः प्रत्येक खंड के साथ प्रतिष्ठान की छूट नीति को संलग्न कर दिया गया है। आशा है कि ये खंड पाठकों के लिए प्रेरणा का स्रोत बने रहेंगे।

(डॉ. देबेन्द्र प्रसाद माझी)
निदेशक, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार,

15, जनपथ,
नई दिल्ली

दलित युवाओं को मेरा यह पैगाम है कि एक तो वे शिक्षा और बुद्धि में किसी से कम न रहें, दूसरे ऐशो–आराम में न पड़कर समाज नेतृत्व करें। तीसरे, समाज के प्रति आपनी जिम्मेदारी संभालें तथा समाज को जागृत और संगठित कर उसकी सच्ची सेवा करें।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर

विषय सूची

भाग I

हिंदुत्व का दर्शन

'फिलासफी ऑफ हिंदुइज्म' शीर्षक के अंतर्गत लिखी गई मूल अंग्रेजी की पांडुलिपि अपने में पूर्ण कृति तथा विशाल योजना का एक अध्याय प्रतीत होता है।

अध्याय–1

अछूतों की कुल जनसंख्या

भारत में किसी समय जनगणना एक सरल और सहज प्रक्रिया हुआ करती थी, जिसमें केवल जनसंख्याविदों को ही रूचि रहती थी। बाकी किसी को इसमें दिलचस्पी नहीं होती थी। आज गणना पर अत्यधिक ध्यान दिया जा रहा है। सिर्फ राजनीतिज्ञ को ही नहीं, बल्कि जन सामान्य को भी चिंता रहती है। इसका कारण यही है कि भारत की राजनीति आज संख्या का खेल बन गई है। संख्या ही वह तत्व है, जो एक समुदाय को दूसरे से अधिक राजनैतिक महत्व देती है। ऐसा दुनिया के किसी और देश में नहीं होता। इसी का परिणाम है कि जनगणना में इस प्रकार की गड़बड़ी की जाती है, जिससे कि संख्या के आधार पर राजनीतिक लाभ बटोरा जा सके। जनसंख्या की इसी गड़बड़ी में हिन्दू, मुसलमान और सिख ने अपनी–अपनी भूमिका रसोईघर के मुख्य रसोइये की निभाई है। इसी में अछूत और ईसाई भी रुचि ले रहे है जिनका जनगणना की कारीगरी में कोई हाथ नहीं है, क्योंकि देश के प्रशासन में उनका कोई स्थान नहीं है जो जनगणना का काम देखता है, बल्कि इसके विपरीत हिंदू, मुसलमान और सिख अछूतों के समूह को जनगणना के आधार पर काट–छांट कर अपने साथ गिन रहे हैं। 1940 की जनसंख्या में खास तौर पर ऐसा हुआ। पंजाब के कुछ विशेष भागों में सिखों ने अछूतों को योजनाबद्ध तरीके से डराया, धमकाया और सताया। उनका इरादा था कि अछूतों को विवश किया जाए कि वे सिख न होते हुए भी जनसंख्या में अपने को सिख लिखवाएं। इससे अछूतों की जनसंख्या सिकुड़ गई और सिखों की बढ़ गई। हिंदुओं ने अलग से एक अभियान चलाया कि जनगणना में कोई अपनी जाति न लिखवाए। अछूतों से एक खास अपील कि गई। उन्होंने बताया कि जाति का नाम ही यह प्रकट करता है कि वे अछूत हैं और यदि वे अपनी जाति का उल्लेख न करके केवल यही लिखवाएं कि वे हिंदू हैं, तो उनके साथ अन्य हिन्दूओं की तरह बर्ताव किया जाएगा और किसी को यह पता भी नहीं चलेगा कि वे अछूत हैं। अछूत इस झांसे में आ गए ओर उन्होंने निश्चय किया कि

वे जनगणना में अपने को अछूत न लिखवाएंगे व केवल हिन्दू बताएंगे। नतीजा साफ था। अछूतों की जनसंख्या घट गई और हिंदुओं की बढ़ गई। जनगणना की इस कारीगरी ने क्या तथा कहां तक गुल खिलाए यह कहना उचित है। परन्तु निस्संदेह इसका बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। जनगणना में सर्वत्र कारीगरी की गई। परंतु इस कारीगरी की गाज सबसे ज्यादा अछूतों पर गिरी है। इन हालात में ब्रिटिश भारत की जनगणना में अछूतों की जो कुल जनसंख्या दिखाई गई है वह स्वीकार्य नही है। परंतु यह कहना गलत न होगा कि ब्रिटिश भारत में अछूतों की मौजूदा संख्या लगभग 6 करोड़ होगी।

अध्याय-2

अछूतों का महत्व

संसार में अधिकांश देशों में ऐसे वर्ग हैं जो निम्न वर्ग कहे जाते हैं। ये रोम में स्लेव या दास कहलाते थे। स्पार्टन में इनका नाम हेलोटस या क्रीत था। ब्रिटेन में ये विलियन्स या श्रुद्र कहलाते थे, अमरीका में नीग्रो और जर्मनी में ये यहूदी थे। हिंदुओं में यही दशा अछूतों की थी, परन्तु इनमें से कोई इतना बदनसीब नहीं था, जितना अभागा अछूत दास, क्रीत श्रुद्र सभी लुप्त हो गए हैं। परंतु छुआछुत का भूत आज भी मौजूद है और यह तब तक मौजूद रहेगा जब तक हिंदू धर्म का अस्तित्व है। अछूत यहूदियों से भी गया-बीता है। यहूदियों की दुर्दशा उनकी अपनी करनी के कारण है। अछूतों की दुर्गति के कारण नितांत भिन्न है। यह निर्मम हिंदुओं की साजिश के शिकार है, जो उनकी दुर्दशा के लिए बर्बर तत्वों से कम नहीं है। यहूदी तिरस्कृत हैं, परन्तु उनकी तरक्की के रास्ते बंद नहीं कर दिए गए हैं। अछूत केवल तिरस्कृत ही नहीं है, बल्कि उनकी तरक्की के सभी दरवाजे बंद हैं। फिर भी अछूतों की तरह किसी का ध्यान नहीं गया 6 करोड़ प्राणियों की अनदेखी हो रही है।

भारत में आजादी का जो कोलाहल मचा है, उसमें यदि कोई वस्तु है तो वह है अछूतों का हेतु। हिंदुओं और मुसलमानों की लालसा स्वाधीनता की आकांक्षा नहीं है। यह तो सत्ता संघर्ष है, जिसे स्वतंत्रता बताया जा रहा है। इसी कारण मुझे इस बात पर आश्चर्य है कि किसी दल अथवा किसी संगठन ने अपने आप को अछूतों के प्रति समर्पित नहीं किया। अमरीका साप्ताहिक ''द नेशन'' और इंगलैड के साप्ताहिक ''स्टेट्समैन'' प्रभावशाली अखबार हैं। दोनों ही भारतीय स्वतंत्रता के पक्षधर हैं और ये भारत की स्वतंत्रता का दम भरते हैं। जहां तक मैं जानता हूं, अछूतों की समस्याओं को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस कहती है। अन्य हिंदू और कोई अन्य नहीं जानता कि वास्तव में अछूत क्या है। भारत में हिंदुओं के सिवाय सब जानते हैं कि नाम भी कुछ क्यों न रख लिया हो, यह संदेहातीत है कि यह मध्यमवर्गीय हिंदुओं की संस्था है, जिसको हिंदु पूंजीपतियों का समर्थन प्राप्त है, जिसका लक्ष्य भारतीयों

का समर्थन प्राप्त है, जिसका लक्ष्य भारतीयों की स्वतंत्रता नहीं, बल्कि ब्रिटेन के नियंत्रण से मुक्त होना और वह सत्ता प्राप्त कर लेना है, जो इस समय ब्रिटेन की मुट्ठी में है। कांग्रेस जैसी आजादी चाहती है, यदि उसे वह मिल जाती है, तो इसमें कोई संदेह नहीं कि अछूतों का ठीक वही हाल होगा जो अतीत में होता रहा है। अछूतों के प्रति इस अवहेलना के संदर्भ में अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की भारतीय शाखा बधाई की पात्र है जिसने प्रशांत संबंध संस्थान में मेरा प्रबंध लेख आमंत्रित किया कि मैं इस विषय पर प्रकाश डाल सकूं कि भारत के संविधान में अछूतों की स्थिति क्या होगी। मैं स्वीकार करता हूं कि भारत के नए संविधान में अछूतों की स्थिति पर मेरे वक्तव्य पर निमंत्रण एक सुखद आश्चर्य है। मुझे इस बात से बहुत प्रसन्नता हुई है कि बहुत से काम हाथ में होने के पश्चात भी मैं यह प्रबंध लेख लिखने के लिए अपनी सहमति दे सका हूं।

अध्याय-3

अछूतों की राजनीतिक मांगें

अछूतों की समस्याएं अनेक हैं। वास्तव में कुछ समय से मैं इन समस्याओं पर विचार करने में व्यस्त हूं, जो सैकड़ों पृष्ठों में लिखी जानी हैं। इस प्रबंध लेख की परिधि में मैं यह नहीं कर सकता हूं कि संक्षेप में इस समस्या के लक्षण बताऊं और इस समाधान की ओर संकेत कर संकू, जो अछूतों ने स्वयं सोचे विचारें हैं। मुझे लगता है कि इससे बेहतर कुछ नहीं हो सकता कि मैं निम्नांकित प्रस्तावों की ओर आपका ध्यान दिलाऊं जो अखिल भारतीय परिगणित जाति संघ* ने 18 और 19 जुलाई 1942 में अपने नागपुर अधिवेशन में पारित किए।

प्रस्ताव संख्या-2

संविधान पर सहमति आवश्यक

''सह सम्मेलन घोषित करता है कि परिगणित जातियों को कोई भी नया संविधान स्वीकार्य नहीं होगा, जब तक

(1) इस पर अनुसूचित जातियों की सहमति हो,

(2) उसमें यह बात स्वीकार की जाए कि अनुसूचित जातियों की स्थिति हिंदुओं से विशिष्ट तथा भिन्न है और भारतीय समाज में वे एक महत्वपूर्ण अंग हैं, और

(3) इसी में उन प्रावधानों का उल्लेख हो कि नए संविधान में अनुसूचित जातियों में सुरक्षा की भावना पैदा हो और जो निम्नांकित प्रस्तावों में समाविष्ट हैं।

---

* 1935 के गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट में अछूतों को अनुसूचित जातियां कहा गया है।

प्रस्ताव संख्या-3

नए संविधान में अनिवार्य प्रावधान

''सह सम्मेलन मांग करता है कि अनुसूचित जातियों में सुरक्षा की भावना उत्पन्न करने के लिए संविधान में निम्नांकित प्रावधान किए जाएंः-

(1) प्रत्येक प्रांतीय सरकार द्वारा सहमति के आधार पर अनुसूचित जातियों में प्राथमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा के प्रोत्साहन के लिए वार्षिक धनराशि निश्चित की जाए और यह राशि प्रांतीय राजस्व से प्राथमिकता के आधार पर निकाली जाए।

(2) ऐसे कानून बनाए जाएं कि केंद्रीय और प्रांतीय सरकारों के प्रशासनिक पदों को आरक्षित किया जाए जिनका अनुपात उनकी संख्या, आवश्यकताओं और महत्व के अनुरूप हो।

(3) ऐसे कानूनी प्रावधान किए जाएं कि सरकारी सेवाओं में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या के अनुसार उनके स्थान आरक्षित किए जाएं, जो उनकी आवश्यकताओं और महत्व के अनुरूप हों। सम्मेलन इस बात पर भी बल देता है कि संरक्षित सेवाओं जैसे न्यायपालिका, पुलिस और अनुसूचित जातियों के राजस्व का कार्यों के लिए न्यूनतम निर्धारित योग्यता के आधार पर 10 वर्ष के अंदर नियुक्तियों का प्रावधान किया जाए।

(4) अनुसूचित जातियों को सभी विधायिकाओं और स्वायत्तशासी संस्थाओं में उनकी जनसंख्या, आवश्यकताओं और महत्व के अनुरूप प्रतिनिधित्व की गारंटी का प्रावधान हो।

(5) यह कानूनी प्रावधान किया जाए कि जहां विधायिकाओं और स्वायत्तशाली संस्थाओं में अनुसूचित जातियों को प्रतिनिधित्व दिया जाए, उसका आधार पृथक मतदान हो।

(6) यह कानूनी प्रावधान हो कि अनुसूचित जातियों के लिए सभी केन्द्रीय और प्रांतीय लोक सेवा आयोगों में प्रतिनिधित्व दिया जाए।

प्रस्ताव संख्या-4

पृथक बस्तियां

सम्मेलन की यह सुविचारित राय है,

(क) जब तक अनुसूचित जातियों के लोग हिंदू गांवों के एक छोर पर बसते

रहेंगे और उनके जीवनयापन का कोई साधन नहीं होगा उनकी हिन्दुओं की संख्या कम होगी तब तक वे अछूते बने रहेंगे और हिंदुओं के अत्याचारों के शिकार होते रहेंगे और निर्भय होकर नहीं जी सकेंगे।

(ख) हिंदुओं के अत्याचारों से अनुसूचित जातियों को संरक्षण दिया जाए, क्योंकि स्वराज, हिंदू राज के अतिरिक्त कुछ नहीं होगा तथा हालात और भी बदतर हो जाएंगे।

(ग) कि अनुसूचित जातियों के संपूर्ण विकास के लिए, उन्हें आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा प्रदान की जाए और अस्पृश्यता निवारण का मार्ग प्रशस्त किया जाए।

काफी परिपक्व विचार-विमर्श के बाद यह सम्मेलन इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि भारत में मौजूद ग्राम्य व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन किए जाएं जो सदियों से हिंदुओं द्वारा पैदा की गई अनुसूचित जातियों की सभी मुसीबतों की जड़ हैं। इन परिवर्तनों की आवश्यकता को देखते हुए यह सम्मेलन समझता है कि सरकार की प्रणाली में संवैधानिक परिवर्तन किए जाएं और मौजूदा ग्राम व्यवस्था में परिवर्तन किए जाएं जिनका निम्नांकित आधार हो-

(1) संविधान में अनुसूचित जातियों की वर्तमान बस्तियों को स्थानांतरित किया जाए, पृथक अनुसूचित जाति गांव बसाए जाएं, जो हिंदुओं के गांवों से दूर और स्वतंत्र हों।

(2) अनुसूचित जातियों के नए गांवों के लिए आवास आयोग की स्थापना की जाए।

(3) कृषि योग्य भूमि पर किसी का कब्जा नहीं है, आयोग को दे दी जाय, जो अनुसूचित जातियों की नई बस्तियों को बसाने के काम में लाई जाय।

(4) अनुसूचित जातियों के अवास की योजना के लिए आयोग को अधिाकर दिया जाएं कि वह भूमि अभ्यप्ति कानून के अनुसार निजी मालिकों से जमीन खरीद सके।

(5) संविधान में व्यवस्था की जाए कि केन्द्र सरकार आवास योग को प्रतिवर्ष पांच करोड़ रुपये दे, जिससे आयोग अपना कार्य संपन्न कर सके।

अध्याय–4

हिंदुओं का विरोध

इन मांगों के लिए जो प्रस्ताव रखे गए वे तीन श्रेणियों में थे:

(1) राजनीतिक, (2) शैक्षिक, और (3) आर्थिक और सामाजिक।

राजनीतिक मांगों के अधीन तीन सुरक्षाएं मांगी गई :-

(1) व्यवस्थापिकाओं में प्रतिनिधित्व केवल व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व न हो, बल्कि हिंदुओं और अनुसूचित जातियों का अलग-अलग प्रतिनिधित्व हो।

(2) कार्यपालिका का दायित्व केवल व्यवस्थापिका के प्रति न हो, जिसका अर्थ है केवल हिंदू के प्रति बल्कि वह हिंदू और अछूत दोनों के प्रति उत्तरदायी हो।

(3) प्रशासन केवल सक्षम ही न हो, बल्कि सब वर्गों के प्रति, अछूतों के प्रति भी विश्वसनीय हो और उसमें अछूतों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व हो उनके पास प्रमुख पद हों, ताकि अछूतों को इसमें विश्वास हो।

राजनीतिक मांगों पर हिंदुओं और अछूतों में बहुत विवाद है। अछूतों के मित्र श्री गांधी ने उनकी मांगें स्वीकार करने के बजाय आमरण अनशन रखना बेहतर समझा, हालांकि वे राह पर आ गए, लेकिन यह नहीं पचा पाए कि इन मांगों के पीछे कितना न्याय है। यदि इस स्थान पर मैं यह बताऊं तो उचित रहेगा कि हिंदू अथवा कांग्रेस की प्रतिनिधि सरकार की क्या योजना है :-

(1) भौगोलिक निर्वाचन क्षेत्रें से उम्मीदवार चुने जाएंगे।

(2) कार्यपालिका के सदस्य मात्र व्यवस्थापिका के बहुमत दल से ही रखे जाएंगे।

(3) प्रशासन केवल कर्मचारियों की क्षमता के आधार पर चलाया जाएगा। हिंदुओं ने अपनी योजना को राष्ट्रीय योजना कहा और अछूतों की योजना

को सांप्रदायिक योजना बताया। जैसा कि मैंने बताया है, इस विभेद का कोई आधार नहीं है। यह सुविधा धर्म की मिसाल है। ऐसे हथकंडों से उस वर्ग को कोई लाभ नहीं पहुंच सकता, जो पीढ़ियों से निर्बल वर्ग है। मैं तथाकथित राष्ट्रीय योजना के गुणों की समीक्षा करते हुए इसकी असलियत बताना चाहता हूं। इससे पहले दोनों योजनाओं के स्वीकार्य पक्षों का जिक्र करना वांछनीय है। दोनों का समान उद्देश्य है क्योंकि दोनों प्रतिनिधि व्यवस्थापिका के पक्षधर हैं। मतभेद का मुद्दा उस तरीके पर है, जिससे वह वास्तविक प्रतिनिधि संस्था बन सकेगी। तथाकथित राष्ट्रीय योजना भारतीय व्यवस्थापिका हेतु केवल क्षेत्राधारित निर्वाचन क्षेत्र को पर्याप्त समुचित व्यवस्था स्वीकार करती है। जिसे सांप्रदायिक योजना कहा जा रहा है, वह यह नहीं मानती कि क्षेत्राधारित निर्वाचन क्षेत्र से व्यवस्थापिका वास्तविक प्रतिनिधित्व करेगी, क्योंकि आज भारत का विशेष सामाजिक आधार है। मुद्दा यह है कि क्या क्षेत्राधारित निर्वाचन क्षेत्र भारत में वास्तविक प्रतिनिधि व्यवस्थापिका बन सकते हैं। इसी प्रश्न पर विवाद मौजूद है।

हिन्दुओं की तथाकथित राष्ट्रीय योजना पश्चिमी देशों से अपील करती है कि वे तथाकथित सांप्रदायिक योजना के मुकाबले उसे प्राथमिकता दें। इसका कारण यह है कि पश्चिमी देश जानते है और वे भौगोलक निर्वाचन क्षेत्रें के ही अभ्यस्त हैं। परंतु निस्संदेह तथाकथित राष्ट्रीय योजना गुणानुसार बहुत ठोस नहीं है और इसके इरादे सांप्रदायिक से भी बदतर है।

यह लचर है कि कोई इसकी मीमांसा नहीं करेगा। भौगोलिक निर्वाचन क्षेत्र के क्या गुण अवगुण है? वे संभावनाएं क्या हैं? उनमें से कुछेक का विवरण दिया जा रहा है :-

(1) इसमें निर्वाचन क्षेत्र में बहुसंख्यक मतदाताओं का वर्चस्व होगा, जिससे पूरे निर्वाचन-क्षेत्र की इच्छा प्रतिबिंबित होगी।

(2) प्रतिनिधि के लिए ही काफी होगा कि वह निर्वाचन क्षेत्र की सामान्य भावना का ध्यान रखेगा, जिससे उसे बहुमत दिलाया है और वह एक समुदाय विशेष का प्रतिनिधि होगा, चाहे वह बहुमत कितना भी क्यों न हो यदि वह बहुमत कितना ही क्यों न हो यदि वह बहुमत की अनदेखी करेगा तो बिना किसी सोच विचार के उसकी सरलता से उपेक्षा कर दी जाएगी।

(3) जिन मतों से प्रतिनिधि चुना जाएगा उन्हीं की इच्छा और हितों को देखकर वह कार्य करेगा। यह आशंका नहीं रहेगी कि वह प्रतिनिधि अपने ही वर्ग का हित रक्षण करेगा और अपने मतदाताओं की अनदेखी

करके काम करेगा।

ये सारे अनुमान झूठे हैं और किसी भी सिद्धांत के अनुसार न्याय-संगत नहीं है। इसका कभी प्रयोग भी नहीं गया है। संसदीय सरकार का इतिहास बताता है कि इंगलैंड तक के इतिहास में यह कहानी मिलती है। ऐसा सोचना गलत है कि अधिकांश स्थितियों में विश्वास कर लिया जाए कि देश में सभी वर्गों की कामनाओं का प्रतिनिधित्व किया जाता है। वास्तव में संतोषप्रद ढंग से ऐसा नहीं हो सकता। यदि यह संबंध में सामान्य अपेक्षाओं की कोई हल्की सी झलक मिलती भी है तो यह इस पर निर्भर करता है कि निर्वाचन क्षेत्र के विभिन्न वर्गों के कितने सारे समान हित हैं और उनमें कितनी विविधता है और उनके बीच कितनी समरसता है। स्वाभाविक हैं भारत के समान हित है ही नहीं। जहां संपूर्ण और निष्पक्ष समरसता नहीं है और विभिन्न वर्गों की भागीदारी का मार्ग अवरुद्ध है वहां कोई वर्ग छोटा हो या बड़ा एक दूसरे का हित नहीं सोचता। बहुमत की इच्छा बहुत की इच्छा के सिवाय कुछ नहीं। इस प्रवृति को कोई तर्क बदल नहीं सकता। इस तरह बहुमत को उत्पीड़न की खुली छट होगी।

फिर यह संभावना भी गलत है कि व्यवस्थापिका के लिए चुना गया प्रतिनिधि उन मतदाताओं की आकांक्षाएं पूरी करेगा ही, जो उसे चुनेंगे और उस वर्ग के हितों, को भूल जाएगा या उनकी अनदेखी कर देगा, जिस वर्ग से वह सम्बद्ध है। प्रतिनिधित्व की बात खण्डित वफादारियों का मामला है। इसके दो बल्कि तीन विषय में टकराव होंगे। (1) स्वयं के हित, (2) जिस वर्ग से यह सम्बद्ध है उसके हित और (3) उन मतदाताओं के हित जिन्होंने उसे चुना है। पहली बात को हम भूल भी जाएं फिर भी यह अनुभव की बात है कि प्रतिनिधि उसे मतदाताओं से पहले अपने वर्ग का हित सोचेगा। इससे अलग कोई कुछ और सोचेगा भी क्यों? यह स्वाभाविक है कि उसका स्वयं का स्वार्थ निर्वाचन क्षेत्र से ऊपर ही रहेगा। यह एक कहावत है कि मनुष्य की खाल उसकी कमीज से ज्यादा नजदीक होती है। व्यवस्थापिका सदस्य पर भी यह बात लागू होती है कि उसका वर्ग तो उसकी खाल है और निर्वाचन क्षेत्र कमीज होती है, जिसके विषय में यह कहना व्यर्थ है कि उसका स्थान खाल के बाद ही है।

हिंदू इसीलिए भौगोलिक निर्वाचन क्षेत्रों की दुहाई दे रहे हैं और राजनीतिक ढांचे की बुनियाद उसी आधार भूमि पर रख रहे हैं, जिसे सभी राजनीतिक नियंताओं ने कमजोर बताया है। भौगोलिक निर्वाचन क्षेत्र यूरोपीय देशों की राजनीतिक पद्धति में भी अविश्वनीय माने जा रहे हैं। कई यूरोपीय देशों में प्रतिनिधित्व का आधार भौगोलिक निर्वाचन क्षेत्र था, वहां उसे बदला जा रहा है और दूसरी व्यवस्था कर दी गई है क्योंकि भौगोलिक निर्वाचन क्षेत्रों से काम नहीं चला। जहां यह प्रणाली लागू है, वहां भारी असंतोष है, जिसका कारण यही भौगोलिक निर्वाचन क्षेत्र प्रथा है। व्यावसायिक और कार्यकारी प्रतिनिधित्व के प्रस्ताव हैं, और जनमतसंग्रह के प्रस्ताव हैं कि पुरानी व्यवस्था बदली जाए।

इन परिस्थितियों में यह आशंका उत्पन्न होती है कि हिंदू उस राजनीतिक पद्धति पर इतना जोर क्यों दे रहे हैं, जिसे अन्यत्र तिरस्कृत कर दिया गया है। कारण यह बताया जाता है कि यह एक मात्र पद्धति है, जो राष्ट्रवाद के अनुकूल है। मेरे मस्तिष्क में वास्तविक व्यवस्था कुछ और ही है। हिंदू भौगोलिक निर्वाचन क्षेत्र को इसलिए प्राथमिकता देता है कि उसे पता है कि वह तमाम राजनीतिक सत्ता प्राप्त करके अपनी मुट्ठी में बंद कर लेगा। इस हिसाब को कौन नकार सकता है? हिन्दू जानता है कि भौगोलिक निर्वाचन क्षेत्र में मुकाबली भारी हिंदू बहुमत और अल्पमत अछूतों के बीच होगा। यदि निर्वाचन क्षेत्र भौगोलिक होगा तो वे सभी निर्वाचन क्षेत्रों में जीत जाएंगे। हिन्दू अपने बहुमत के अतिरिक्त अन्य कारणों से भी मजबूत हैं जिससे उनका बहुमत सुदृढ़ होगा। वह कारण है हिंदू धर्म की विशिष्ट जीवन शैली। हिंदू समाज में जाति का स्थान सर्वोत्तम है और दूसरा कारण है चुनावों का परिणाम। हिंदू व्यवस्था में जातियों का निर्धारण इस प्रकार का है– सम्मानितों की स्थिति ऊँची होती है और प्रताड़ितों की नीची। यह भविष्यवाणी करने की आवश्यकता नहीं कि मतदान में कौन सी प्रवृति काम करेगी। कोई सवर्ण हिंदू किसी अछूत को वोट नहीं देगा, क्योंकि उसकी दृष्टि वह इतना निकृष्ट है कि वह व्यवस्थापिका में जाने योग्य नहीं है। दूसरी ओर बहुत से अछूत मतदाता हिंदू उम्मीदवारों को मत देंगे, क्योंकि वह उनकी दृष्टि में उनसे और उनके अछूत भाई से बेहतर व्यक्ति है। इसका कारण यह है कि उसे पहले से बतलाया गया है कि स्वर्ण हिन्दू उसके अछूत भाइयों से बेहतर हैं। मैं दूसरे तरीके का जिक्र नहीं करता जो गरीबों, अशिक्षितों, नासमझों और अंसगठित लोगों का वोट प्राप्त करने के लिए अपनाए जाते हैं, जो अछूत हैं। ये सब परिस्थितियां मिलकर हिंदुओं का प्रतिनिधित्व बढ़ाने की दिशा में काम करेंगी। शुद्ध भौगोलिक निर्वाचन क्षेत्र पद्धति से हिंदुओं का बहुमत निश्चित होगा। वे स्वयं अपना बहुमत बनाएंगे और साथ ही अछूतों को भी मिला लेंगे। यह भी निश्चित है कि अछूतों की सभी सीटें छीन जाएंगी। वे पहले ही अल्प मत में हैं फिर हिन्दू उन्हें उनकी कमजोरी के कारण पटा लेंगे और वे अपने वोट हिंदुओं को वैसे ही अर्पित कर देंगे जैसे भगवानको बलि चढ़ाई जाती है।

भौगोलिक निर्वाचन क्षेत्र बना दिए जाने से हिंदुओं को राजनीतिक सत्ता हड़पने का अवसर मिल जाएगा। यदि सांप्रदायिक निर्वाचन बनाए जायेंगे तो यह सत्ता अछूतों के हाथ में रहेगी। इसमें कोई संदेह नहीं कि वो चाहे इरादा न भी हो राष्ट्रीय योजना उनके अनुकूल परिणामों पर आधारित है, जो सांप्रदायिक योजना से बेहतर होगी।

अध्याय-5

संयुक्त बनाम पृथक मतदान

काफी जद्दोजहद के बाद हिन्दुओं ने यह स्वीकार किया है कि शुद्ध भौगोलिक निर्वाचन क्षेत्र योजना भारत जैसे देश में नहीं चल सकती। सच्चे प्रतिनिधित्व हेतु भौगोलिक और सांप्रदायिक निर्वाचन क्षेत्र के विषय में जो कुछ कहा उसका कारण है कि मैं सौंचता हूं कि जो विदेशी भारतीय राजनीतिक स्थितियों से अवगत नहीं है, उन्हें विवाद की अवधारणा का सही मुद्दा समझना होगा। दुर्भाग्य से सच्चाई यह है कि हालांकि हिन्दुओं ने सांप्रदायिक योजना को स्वीकार कर लिया है परन्तु वे अछूतों की पूर्ण मांग से सहमत नहीं हो पाए हैं। अछूतों की मांग है कि उनके मतदाता पृथक हों। पृथक मतदाताओं का अर्थ है ऐसे मतदाता जो केवल अछूत हों और वे ही विधायिका के अछूत प्रतिनिधि को पृथक मतदान से चुने। हिंदू इस बात पर सहमत हो गए हैं कि कुछ निर्वाचन क्षेत्र अछूतों के लिए आरक्षित कर दिए जाएं। परन्तु वे इस बात पर जोर देते हैं कि विधायिका में अछूतों का जो प्रतिनिधि हो उसका निर्वाचन हिंदू और अछूत दोनों संयुक्त रूप से करें केवल अछूत ही उसे चुने। इस संबंध में भी मैं इस विवाद के दोनों पक्ष पेश करना चाहता हूं। पृथक मतदान पर हिंदुओं ने आपत्ति उठाई है कि पृथक मतदान का अर्थ होगा, राष्ट्र के टुकड़े करना। उत्तर स्वाभाविक है। भारत तकनीकी रूप में कोई राष्ट्र नहीं है। राष्ट्र स्वयं कुछ नहीं होता उसे बनाया जाता है और मैं सोचता हूं कि यह स्वीकार किया जाएगा कि एक समुदाय विशेष का दमन और पृथक्करण राष्ट्र का निर्माण कोई तरीका नहीं है। दूसरी बात है कि हिन्दुओं ने भी स्वीकार किया है कि व्यवस्थापिका में अछूतों का प्रतिनिधित्व अछूत ही करें, तब इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि अछूत प्रतिनिधि अछूतों के वोटों से ही चुना जाएं। यदि यह सही है तो पृथक मतदान ही एकमात्र पद्धति है जिससे अछूतों के लिए सच्चा प्रतिनिधित्व हो सकता है। पृथक मतदान के विरूद्ध हिंदुओं का तर्क थोथा और असमान्य है। जिस धरातल पर अछूतों की मांग आधारित है, उसे हिंदुओं ने स्वीकार कर लिया है। पृथक मतदान ही ऐसा निष्कर्ष हो सकता है

जो तार्किक धरातल पर टिका है। आप धरातल को स्वीकार करके परिणाम को कैसे नकार सकते हैं? अल्पसंख्यकों के संरक्षण के लिए विशेष पद्धति अपनाई जाती है। अछूतों जैसे अल्पसंख्यकों को यह अनुमति क्यों न हो कि वे यह निर्णय कर सकें कि उनके संरक्षण की क्या व्यवस्था हो। यदि अछूत पृथक मतदानका निश्चय करते हैं तो उनकी इच्छा स्वीकार क्यों न की जाए? ये कुछ ऐसे प्रश्न है, जिनका हिंदू उत्तर नहीं दे सकते। कारण यह है कि हिंदुओं के पृथक मतदान पर वास्तविक आपत्ति राष्ट्र के नाम उठाई गई आपत्ति से बिल्कुल भिन्न है। वास्तविक आपत्ति इस कारण है कि पृथक मतदान से वह अछूतों के लिए आरक्षित सीटें हड़प नहीं सकेंगे। दूसरी ओर संयुक्त मतदान यह अवसर प्रदान करेगा। मैं कुछ उदाहरणों से यह बताना चाहता हूं कि किसी निर्वाचन क्षेत्र में संयुक्त और पृथक मतदान किस प्रकार चलेगा। मद्रास प्रसीडेंसी के निम्नलिखित निर्वाचन-क्षेत्र को लें।

स.	निर्वाचन क्षेत्र का नाम	हिन्दुओं की कुछ सीटें	अछूतों के लिए निर्धारित सीटें	कुल हिंदू मतदाता	कुछ अछूत मतदाता	हिंदू और अछूत वोटों का अनुपात
1.	मद्रास शहर दक्षिण	2	1	40,626	2,577	16 प्र.श.
2.	चिक्काकोल	2	1	83,456	5,125	16 , , ,
3.	विजयनगरम	2	1	47,594	996	49 , , ,
4.	अमलाथुरम	1	1	52,805	7,760	7 , , ,
5.	एल्लोर	1	1	51,795	5,515	9 , , ,
6.	बंदार	1	1	84,191	8,723	10 , , ,
7.	तेनाली	1	1	1,32,107	5,732	24 , , ,

उपरोक्त तालिका में सात निर्वाचन-क्षेत्रों में दिए गए आंकड़ें मद्रास प्रेसीडेंसी से सहज रूप से लिए गए आंकडे दर्शनीय हैं। उपरोक्त आंकडों की समीक्षा से भली भांति समझ से आ जएगा कि यदि इन निर्वाचन क्षेत्रें में पृथक मतदान कराया जाए तो अछूत अना ऐसा प्रतिनिधि चुन सकते हैं, जिसमें उन्हें पूरा विश्वास हो और जो व्यवस्थापिका में अछूतों की तरह से हिंदुओं से लड़ाई लड़ सकते हैं। यदि दूसरी ओर इन निर्वाचन-क्षेत्रों में संयुक्त मतदान होगा तो अछूतों के प्रतिनिधि वास्तविक न होकर नाममात्र के होंगे, क्योंकि संयुक्त मतदान में अछूत प्रतिनिधि हिंदुओं का नामजद नहीं होगा, परिणामस्वरूप उनकी कठपुतली नहीं बनेगा, वहां 1: 24 या 1: 49 की स्थिति में उेस बहुत कम मत मिलेंगे। यह संयुक्त मतदान हिन्दुओं के फायदे के लिए होगा क्योंकि हिंदुओं के विचार से संयुक्त मतदान अछूतों के लिए भुतहा नगर होगा, क्योंकि

हिन्दुओं को यह अधिकार होगा कि वे अछूतों का नाममात्र का प्रतिनिधि नामजद कर देंगे, परन्तु असल में वह हिंदुओं की कठपुतली होगा। वह समझ में आ जाएगा कि हिंदुओं द्वारा तथाकथित सामुदायिक योजना का विरोधा और तथाकथित राष्ट्रीय योजना की वकालत न सैद्धांतिक है और न राष्ट्र के लिए संघर्ष। इसमें उनके अपने हित हैं। वे अखण्ड राजनीतिका सत्ता के लिए लड़ रहे हैं। उनका पहला मोर्चा इसलिए है कि किसी को हिस्सा ने मिले जैसा कि अविभाजित हिंदू परिवार में कर्ता सारे लाभ समेटे रहता है। इसी कारण वे भौगोलिक निर्वाचन-क्षेत्र पर अड़े हैं। इस मोर्चे पर असफल हो जाने पर उन्होंने दूसरा मोर्चा खोल लिया। वह चाहते हैं कि यदि सत्ता क्षेत्र में उसे कुछ झुकना भी पड़े तो नियंत्रण उन्हीं के हाथों में रहे। यह तभी हो सकता है जब संयुक्त मतदान हो और पृथक मतदान को रद्द कर दिया जाए। इसी कारण हिंदू पृथक मतदान पर एतराज करते हैं और संयुक्त पर जोर देते हैं।

तथाकथित राष्ट्रीय योजना का उद्देश्य चाहे सांप्रदायिक न कहलाए परंतु निस्संदेह इसका परिणाम यही होगा।

अध्याय-6

कार्यपालिका

अछूतों की दूसरी राजनीतिक मांग है कि उन्हें न केवल व्यवस्थापिका में प्रतिनिधित्व दिया जाए, बल्कि उनका कार्यपालिका में भी प्रतिनिधित्व हो। हिंदुओं ने इस मांग का भी विरोध किया। हिन्दुओं के तर्क दो प्रकार के हैं। पहला यह कि कार्यपालिका में व्यवस्थापिका के बहुमत का प्रनिधित्व हो और दूसरा यह कि कार्यपालिका का सदस्य सक्षम हो। पहले मैं दूसरे तर्क को लेता हूं। यह एक ऐसा तर्क है, जो बुनियादी तौर पर वजनदार है। परंतु इस बात पर भी अहसास होना चाहिए कि प्रतिनिधि सरकार में ऐसा तर्क नहीं चलता क्योंकि प्रोफेसर डिके का तर्क है – ''सवैधानिक व्यवस्था का यह प्राथमिक उद्देश्य नहीं है कि संसद बौद्धिकता की दृष्टि से श्रेष्ठतम हो। दरअसल यह प्रतिनिधि सरकार के सिद्धांत के प्रतिकूल होगा कि किसी देश की जनता के बजाए संसद अत्यधिक बुद्धिजीवियों का ही प्रतिनिधित्व करें।

सक्षमता पर जोर देना आवश्यक है। किसी ने यह नहीं कहा कि केवल अछूत होने के नाते किसी को मंत्री बना दिया जाए। यदि अछूतों को मंत्रिमंडल में प्रतिनिधित्व का अधिकार दिया जाए, तो निस्संदेह वे अपने में से अति सक्षम लोगों को चुनेंगे। प्रत्येक प्रांत में ऐसे अनेक लोग उनमें है जो इन पदों पर काम कर सकें। फिर यह बात केवल अछूतों तक ही क्यों सीमित रहे? अछूतों की तरह मुसलमान भी दावा कर रहे हैं कि मंत्रीमंडल में स्थान दिया जाए। हिंदू यह शर्त मुसलमानों पर क्यों लागू नहीं कर रहे हो? इससे पता चलता है कि हिंदुओं की आपत्ति तर्क पर आधारित नहीं है। यह एक बहाना है।

हिंदुओं का अन्य तर्क बहुमत और अल्पमत शब्दों का दुरुपयोग है। लगता है। वे भूल गए हैं कि बहुमत और अल्पमत राजनीतिक शब्दाबली है। राजनीतिक दृष्टि से न तो कोई स्थाई बहुमत होता है और न अल्पमत। राजनीतिक बहुमत और राजनीतिक अल्पमत बदलते रहते हैं। आज जो बहुमत है कल वह अल्पमत रह जाएगा और आज जो अल्पमत है, वह बहुमत में बदल जाएगा। हिंदुओं और अछूतों में वह स्थिति नहीं

है, जो बहुमत और अल्पमत की होती है। हिंदुओं और अछूतों में ऐसा अंतरण नहीं होता जैसा सामान्य अल्पमत और बहुमत में होता है। अल्पमत और बहुमत में एक और लक्षण है। वह संबंध हिंदुओं और अछूतों के बीच है ही नहीं। अल्पमत और बहुमत का अंतर वैचारिक होता है, वह आधारभूत नहीं होता जैसा कि हिंदुओं और अछूतों के बीच आपसी कटूता में निहित है। अल्पमत और बहुमत संबंधों में तीसरा भेद भी होता है। वह भी हिंदुओं और अछूतों में विद्यमान नहीं है। कभी जो बहुमत जनता है, भावनाओं के कारण वह अल्पमत में बदल जाता है। यदि अल्पमत वाले संतुष्ट हो जाते हैं, तो वे बहुमत से टकराव नहीं करते। पर हिंदू बहुसंख्यकों और अछूतों अल्पसंख्यकों के बीच संबंधों के कारण परिवर्तनशील नहीं है। वे तो चिरंजन अलग-अलग समुदाय है। वे मात्र एक दूसरे से भिन्न ही नहीं है बल्कि उनमें परस्पर कटुता है। उनके विषय में इस तरह की बात करना वैसा ही होगा, जैसे कोई कहे कि जर्मन तो बहुसंख्यक है और फ्रांसीसी अल्पसंख्यक हैं।

अध्याय–7

सरकारी सेवाएं

अछूतों की मांग है कि देश में न्यूनतम योग्यता के आधार पर सरकारी सेवाओं में एक निश्चित अनुपात अछूतों के लिए आरक्षित किया जाए। हिंदू जैसे अछूतों की अन्य मांगों का विरोध करते हैं वैसे ही इसका भी करते हैं। इनका कहना है कि क्षमता और कार्यकुशलता सरकार के लिए आवश्यक है और नौकरियों का आधर वही रहना चाहिए न कि जाति न वर्ग। अनिवार्य योग्यताओं के विषय में कोई विवाद नहीं है, न ही क्षमता और कार्यकुशलता के मापदंड के बारे में कोई मतभेद है। मतभेद का एक ही कारण है और वह बहुत महत्वपूर्ण है। वह है कि क्या जाति और वर्ग का सरकारी नौकरियों में नियुक्ति के लिए ध्यान रखा जाए? केवल शैक्षिक योग्यता पर टिके रहने के बजाए हिंदू इस बात पर बल देते हैं कि सरकारी नौकरियों में नियुक्तियां सभी वर्गों की खुली प्रतियोगिता के आधार पर की जाएं। उनका तर्क है कि इससे दोनों उद्देश्यों की पूर्ति हो जाएगी। यह व्यवस्था कार्यकुशलता के उद्देश्य को पूरा करेगी। दूसरे इससे अछूतों को सरकारी नौकरियों में प्रवेश पर कोई प्रतिबंध भी न होगा।

हिंदू अछूतों की मांग का विरोध यह कह कर जता रहे हैं कि कार्यकुशलता और प्रतियोगिता ही विश्वसनीय व्यवस्था है। इसके लिए भी तर्क असली मुद्दे से हट कर दिया जाता है। प्रश्न यह नहीं है कि क्या सरकारी नौकरियों के लिए कार्यकुशल व्यक्तियों को चुनाव प्रतियोगिता के आधार पर किया जाना ही उचित है। प्रश्न यह है क्या मात्र यही कर देने से अछूत उम्मीदवार नौकरियों में आ जाएंगे कि प्रतियोगिता जाति और वर्ग का भेद किए बिना सबके लिए खुली होगी। यह देश की प्रणाली पर निर्भर है। क्या शिक्षा यथोचित रूप से लोकतांत्रिक है? क्या शिक्षा सुविधाओं का व्यापक विस्तार है? अन्य वर्गों के लोगों को प्रतियोगिता के अवसर मिलते हैं। यदि नहीं, तो सभी वर्गों को खुली प्रतियोगिता में शामिल होने के लिए कहना अंधेर है। भारत में यह मूल स्थिति की धोखे की जननी है। भारत में उच्च शिक्षा पर हिंदुओं का एकाधिकार है और वह भी ऊंची जातियों का। इस समाज में

अछूतों को तो शिक्षा प्राप्ति के अवसर ही नहीं दिए जाते। उनकी निर्धनता ऊंचे पदों के लिए उच्च शिक्षा दिलाने में सबसे बड़ी बाधा है .... और उच्च सरकारी पद हैं, जिनका कोई मतलब होता है, क्योंकि उनका ही कारगर महत्व होता है.... ये उनकी पहुंच से दूर हैं। सरकार उनकी उच्च शिक्षा दिलाने का दायित्व नहीं लेगी। उन्होंने अपने प्रस्ताव में यह मांग की है.... और हिंदू अपना दान सहयोग अछूतों को नहीं देंगे.... हिंदू दानशीलता पूर्वतः सांप्रदायिक है..... इस तरह नौकरियों के लिए अछूतों द्वारा कही गई बात किसी भी प्रकार अनुचित नहीं है। वे मानते हैं कि कार्य-कुशलता बनाए रखना जरूरी है। इसी कारण अपने प्रस्ताव में उन्होंने स्वयं ही कहा है कि न्यूनतम योग्यता की शर्त पूरी होने पर ही उनकी मांग स्वीकार की जाए। दूसरे शब्दों में अछूतों की मांग यही है कि सभी सरकारी नौकरियों के लिए न्यूनतम योग्यता निर्धारित की जाए और यदि किसी पद के लिए दो व्यक्ति आवदेन करें तो और अछूत उम्मीदवार न्यूनतम योग्यता रखता है तो चाहे हिंदु उम्मीदवार को न्यूनतम योग्यता से बढ़ कर योग्यता भी प्राप्त क्यों न हो, अछूत उम्मीदवार को प्राथमिकता दी जाए। इसका वास्तविक अर्थ यही है कि नियुक्ति का आधार न्यूनतम योग्यता ही हो, उच्चतम योग्यता नहीं। यह उन लोगों को विचित्र लग सकता है, जिन्हें इस बात पर कोई आपत्ति नहीं है कि कार्यकुशलता के मापदंड पर सरकारी सेवाओं में कुछ वर्गों का एकाधिकार हो जाए। पर क्या कैम्पवेल ने यह नहीं कहा कि अपनी सरकार अच्छी कही जाने वाली गैरों की सरकार से बेहतर होती है? अछूतों की मांग और क्या है? वे कार्यकुशल प्रशासन को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। इसलिए सरकारी सेवाओं के लिए वे न्यूनतम योग्यता की शर्त स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। अछूत अच्छी सरकार के मुकाबले अपनी सरकार का विचार त्याग देने के लिए तैयार नहीं है। उच्चतम योग्यता के आधार पर बनाई गई सरकार सांप्रदायिक सरकार होगी। इसलिए क्योंकि मात्र हिंदू ही न्यूनतम योग्यता की अपेक्षा उच्च शिक्षा का दावा पेश कर सकते हैं। अछूत ऐसा नहीं चाहते। उनका कहना यह है कि कार्यकुशल सरकार के लिए न्यूनतम योग्यता पर्याप्त है, क्योंकि इसी से अपनी सरकार संभव है। इसलिए सरकारी नौकरियों में प्रवेश के लिए न्यूनतम योग्यता का नियम चाहिए। इसी से स्व-सरकार और कार्यकुशलत सरकार सुनिश्चित हो सकती है।

अध्याय-8

अलग बस्तियां

प्रस्ताव संख्या 4, जिसका उल्लेख इस लेख के पहले भाग में किया गया है, मैं समझता हूं वह स्वयं ही एक व्याख्या है और उसके लिए विस्तृत टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं है और इस संक्षिप्त प्रबंध लेख में इससे अधिक विवरण देना संभव भी नहीं है। अलग बस्तियों की मांग अछूतों के लिए नव-जीवन आंदोलन कहीं जा सकती है। इस आंदोलन का उद्देश्य अछूतों को हिंदुओं की दास्ता से मुक्त कराना है। जब तक मौजूदा व्यवस्था रहेगी, तब तक अछूतों के लिए यह संभव नहीं हो सकेगा कि वे हिंदुओं से दूर जा सकें या अस्पृश्यता से छुटकारा पा सकें। अछूतों का भाग्य हिन्दुओं के साथ गहनता से गुथा हुआ है कि वे उन्हें अछूत बना देते हैं जिससे उनकी पहचान अछूतों के रूप में होती है। निस्संदेह भारत एक ग्राम प्रधान देश है और जब तक ग्रामीण जीवन में उन्हें अछूतों के रूप में जाना जाता रहेगा, अछूतों को अस्पृश्यता से मुक्ति नहीं मिल सकती। ग्रामीण व्यवस्था अस्पृश्यता को जीवित रखती है और इसलिए अछूत यह मांग करते हैं कि ग्रामीण व्यवस्था को भंग किया जाए और अछूत सामाजिक रूप से पृथक बना दिये गये हैं, उन्हें भौगोलिक और क्षेत्रीय दृष्टि से भी पृथक कर दिया जाए और उनके अलग गांव बसाएं जाएं, जिसमें ऊंच-नीच और छूत-अछूत का भेद मिट जाएगा।

अछूतों की अलग बस्तियों के लिए मांग गांवों में अछूतों की आर्थिक दशा के कारण भी उठाई गई है। इस बात से कोई इंकार नहीं कर सकता कि उनकी दशा अत्यंत दयनीय है। वहाँ कुछ भूमिहीन मजदूर हैं, वे रोटी-रोजी के लिए हिंदुओं पर निर्भर करते हैं। हिंदू उन्हें जितनी मजदूरी पर रखना चाहें वह उन्हें मंजूर करनी होती है। जिन गांवों में वे रहते हैं, वहां वे कोई व्यापार या व्यवसाय नहीं कर सकते। अस्पृश्यता के कारण हिंदू उनसे कोई सहयोग नहीं करेंगे, इसलिए यह स्वाभाविक है कि अछूत जिस व्यवसाय को करना चाहेंगे, जब तक वे हिंदुओं के गावों में रहेंगे

उसे नहीं अपना सकेंगे। आर्थिक निर्भरता उनकी गरीबी और अपमानजनक स्थिति का परिणाम है। हिंदुओं की एक जीवन शैली है, जो उनके धर्म का एक अंग है। इस जीवन शैली में उनको बहुत से विशेषाधिकार प्राप्त हैं; और अछूतों के सिर पर अपमानों का बोझ लदा हुआ है, जो मानवता के मूल्यों से मेल नहीं खाता। देश में फैले अछूतों का नवजीवन आंदोलन हिंदुओं द्वारा किए जाने वाले अपमान और अन्याय के विरूद्ध संघर्ष है, जो हिंदुओं ने धर्म के नाम पर उनके मत्थे मढ़ दिया है। हिंदुओं और अछूतों में भारत के हर गांव में भीतर ही भीतर संघर्ष चल रहा है। अभी यह प्रकट नहीं हुआ है। हिंदू समाचार पत्र इस बात को प्रचारित नहीं कर रहे हैं कि कहीं विश्व की नजरों में उनकी आजादी के प्रयत्नों की पोल न खुल जाए। लेकिन एक प्रशांत संघर्ष वास्तविकता है। ग्रामीण प्रणाली में सम्मानित जीवन संघर्ष में अछूत अपने आपको बेबस पाते हैं। यह संघर्ष आर्थिक और सामाजिक रूप से छोटे से वर्ग अछूतों के बीच है। हिंदू अक्सर अछूतों को कुचलने से कई कारणों से सफल हो जाते हैं। पुलिस और अदालते हिंदुओं के पक्ष में होते हैं। हिंदुओं और अछूतों के बीच विवाद में अछूतों को पुलिस से संरक्षण और अदालतों से न्याय नहीं मिलता। पुलिस और मजिस्ट्रेट हिंदू है और वे अपने कर्तव्य के बजाय अपने वर्ग की ओर झुक जाते हैं परन्तु हिंदुओं के हाथ में मुख्य हथियार आर्थिक शक्ति है जो गांवों में बसने वाले गरीब अछूतों के समानता संघर्ष को दबा सकते हैं जिसका उल्लेख 1928 में बम्बई द्वारा बनाई गई समिति की रिपोर्ट में किया गया है जो दलितों जातियों की शिकायतों के विषय में तैयार की गई थी। उसी से निम्नांकित सार-संक्षेप लिए गया है। इसमें इतनी सरलता से स्थिति पर प्रकाश डाला गया है कि हिंदुओं की सामाजिक व्यवस्था से अनभिज्ञ विदेशी भी समझ जाएं कि हिंदू अछूतों पर क्या क्या जुल्म कर सकते हैं। समिति ने कहा हैं :

> "हालांकि हमने दलित जातियों को नागरिक उपयोग के सभी अधिकार दिलाने की सिफारिश की है फिर भी हमें डर है कि अभी बहुत दिनों तक उनके पालन में कठिनाईयां होंगी। पहली कठिनाई तो यह है कि कट्टर हिंदू उनके विरूद्ध खुलमखुल्ला उनके विरूद्ध हिंसा पर उतर आएंगे। यह उल्लेखनीय है कि प्रत्येक गांव में दलित जातियों के लोग बहुत थोड़ी संख्या में हैं, इसके विपरीत कट्टरपंथियों की संख्या बहुत अधिक है, जो दलित जातियों की ओर से अपने हितों और महत्व पर आक्रमण की निर्मूल आशंका से किसी भी कीमत पर संरक्षण को तैयार करते हैं। पुलिस कार्रवाई के भय से कट्टरपंथियों द्वारा

हिंसा कुछ सीमा तक नहीं हो पाती है। इसी कारण ऐसी घटनाएं गिनी-चुनी ही होती हैं।

दूसरी कठिनाई दलितों की मौजूदा आर्थिक स्थिति है। प्रेसीडेंसी के अधिकांश भागों में दलित आर्थिक दृष्टि से पराश्रित हैं। कुछ लोग कट्टरपंथी वर्गों की जमीन आसामियों की हैसियत से उनकी मर्जी पर जोतते हैं। कुछ कट्टरपंथियों के यहां खेत मजदूरों के रूप में काम करते हैं बाकी गांव की खिदमत के बदले में मिलने वाले खाने या अनाज पर गुजारा करते हैं। हमें ऐसे बहुत से मामले सुनने को मिले हैं, जहां कट्टरपंथियों ने अपनी धन-सत्ता को दलितों के विरूद्ध हथियार के रूप में इस्तेमाल किया है। जब दलितों ने अधिकारों का इस्तेमाल करना चाहा, तो उनकी जमीन छीन ली गई, उनको काम से निकाल दिया गया और गांव की सेवा से उन्हें हटा दिया गया। उनका बहिष्कार इस हद तक किया जाता है कि उन्हें आम रास्तों पर नहीं दिया जाता और गांव के बनिए उन्हें रोजमर्रा की जरूरत की चीजें नहीं बेचते। ऐसी बातें भी बताई गई हैं कि कभी-कभी छोटी मोटी बातों पर भी दलितों का सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता है। अधिकतर तो तब जब दलित जातियों को लोग सार्वजनिक कुओं से पानी लेने की कोशिश करते हैं, ऐसी घटनाएं घटती हैं। परन्तु ऐसे मामले भी कम नहीं हैं, जब इसी बात पर दलितों का कठोर बहिष्कार कर दिया जाता है कि वे जनेऊ पहन लेते हैं, जमीन का कोई टुकड़ा खरीद लेते हैं, अच्छे वस्त्र या जेवर पहन लेते हैं या उनको बारात में दुल्हें को घोड़ी पर चढ़ाकर निकाला जाता है।''

अलग बस्तियां बसाए जाने की मांग एक नई मांग है, जो अछूतों ने पहली बात रखरी है। यह कहना संभव नहीं है कि हिंदू इस मांग पर क्या रवैया अपनाएंगे। परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि अछूतों द्वारा पेश की गई यह सबसे महत्वपूर्ण मांग है और मुझे विश्वास है कि अन्य मांगों के बारे में कुछ भी हो वे इस मांग पर नहीं झुक सकते। हिंदुओं की यह सोच है कि हिंदुओं और अछूतों का संबंध ईश्वर ने बनाया है। जैसा कि बाइबल में कहा गया है कि, पति अपनी पत्नी से जुड़ा है और वे बाइबल की भाषा बोलेंगे कि जो प्रभु इच्छा से मिलाए गए हैं कोई मनुष्य उन्हें जुदा नहीं कर सकता। अछूतों ने प्रण कर लिया है कि हिंदुओं के साथ ऐसे किसी भी संबंध को वे स्वीकार नहीं करते। वे इस रिश्ते को तोड़ देना चाहते हैं और हिंदुओं से अविलंब अलग हो जाना चाहते हैं।

इस संबंध में केवल एक प्रश्न उठता है कि इस कार्य पर आने वाला खर्च कौन उठाएगा? खर्च के बारे में अछूत कहते हैं कि वह सरकार उठाए। इसमें कोई संदेह

नहीं कि यह हिंदुओं पर ही आकर पड़ेगा। परन्तु इसका कोई कारण नहीं कि हिंदु इसे न उठाएं। हिंदुओं की मुट्‌ठी में ही तो सब कुछ है। देश भर में जमीन के मालिक वही है, व्यापार उनके हाथ में है और सरकार भी उन्हीं की है। राजस्व और लाभ के सभी साधन उनके नियंत्रण में हैं। अन्य समुदाय मुख्य रूप से अछूत, लकड़हारे और पनिहारे हैं। हिंदुओं की सामाजिक व्यवस्था ने हर बीज का एकाधिकार उन्हें सौंप रखा है। इसका कोई कारण नहीं है कि उनसे इस योजना की कीमत चुकाने के लिए न कहा जाए, जबकि वास्तव में सब कुछ उनके ही पास है।

जहां तक समय की बात है, यह तो छोटी सी बात है। यदि अछूतों के स्थानांतरण में बीस वर्ष भी लग जाएं - जो लोग हजारों वर्ष से हिंदुओं के गुलाम रहे हैं - वे 20 वर्ष में ही सही उस गुलामी से मुक्ति पर प्रसन्न होंगे।

अध्याय-9

जाति और संविधान

यह प्रश्न न्यायसंगत है कि अछूतों की मांगों को संविधान में क्या शामिल किया जाए? विश्व में कहीं भी संविधान निर्माताओं के समक्ष यह विवशता नहीं थी कि वे ऐसे मामलों को देखें। मैं मानता हूं कि यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है और जो इस प्रश्न को उठा रहे हैं या इस बात पर जोर दे रहे हैं कि इसका संवैधानिक महत्व है, इसके उत्तर की उनसे ही अपेक्षा है। मेरी दृष्टि में इसका उत्तर स्वाभाविक है। भारत की सामाजिक व्यवस्था से ही यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि इसका संवैधानिक महत्व है। केवल हिंदुओं की जाति प्रथा और सामाजिक व्यवस्था ही इसके लिए उत्तरदायी है। विदेशियों के समक्ष यथोचित व्याख्या के लिए हिंदू-समाज और धर्म-व्यवस्था के फलितार्थ बताने के लिए यह संक्षिप्त वक्तव्य पर्याप्त नहीं है बल्कि यह भी सत्य है कि इस रिपोर्ट की सीमित परिधि में यह बताना असंभव है कि जाति प्रथा के संविधान में क्या फलितार्थ होंगे। मैं जातियों के उन्मूलन संबंधी अपनी पुस्तक में इस पर पूरी तरह प्रकाश डालूंगा, जिसे मैंने कुछ दिन पूर्व लिखा है। मुझे विश्वास है कि इससे हिंदुओं की जाति और धार्मिक व्यवस्था के सामाजिक और आर्थिक पक्ष पर काफी प्रभाव डाला गया है। इस प्रबंध लेख में मैं संक्षेप में निम्नांकित सामान्य जानकारी पेश करुंगा। संविधान की रचना में सामाजिक ढांचे का सदैव ध्यान रखना होता है। सामाजिक तत्वों की सक्रियता केवल सामाजिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहती। वे राजनीति में भी घुस जाते हैं। अछूतों का यही विचार है और मुझे विश्वास है कि यह तथ्य निर्विवाद है। हिंदू इस दलील और इसकी प्रबलता से पूरी तरह अवगत है। परन्तु वे इस बात से मुकर जाएंगे कि हिंदू समाज व्यवस्था यूरोपीयन समाज व्यवस्था से भिन्न है। वे इस तर्क का उत्तर देने के निलए यह कहेंगे कि हिंदुओं की जाति प्रथा और पश्चिमी समाज की वर्ग व्यवस्था के बीच कोई भेद नहीं है। यह वास्तव में सफेद झूठ है और वे फिर भी यह साबित कर देंगे कि वे वर्ग व्यवस्था और जाति व्यवस्था का भेद ही नहीं जानते। जाति प्रथा का मूल है विलगाव और इसमें एक

जाति को दूसरी जाति से भिन्न माना जाता है। दूसरे समाजों की व्यवस्था में विभाजन गुणात्मक है। वर्ग प्रणाली में भी भिन्नता का स्थान है किंतु वह किसी वर्ग के कार्यों को जन्म-जन्मांतर के लिए तय करने के लिए नहीं है और न ही उसमें सामाजिक मेल-मिलाप पर कोई प्रतिबंध होता है। वर्ग व्यवस्था श्रेणियों के सही विभाजन की व्यवस्था श्रेणी में वर्गों का सामाजिक रूप से विभाजन नहीं होता जबकि जाति प्रथा में भिन्न-भिन्न जातियों के बीच निर्धारित परस्पर संबंधा निश्चित रूप से अनिवार्य और अविनाशी होते हैं, जो पक्के तौर पर असमाजिक हैं। यदि वह विश्लेषण सही है, तो तथ्य से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि हिंदू समाज व्यवस्था का स्वरूप भिन्न है, तो इसका परिणाम यही होगा कि हमारा राजनीतिक स्वरूप भिन्न होना चाहिए। अछूतों की कामना यही है, उसे सीधे शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि साधन और साध्य में समन्वय होना चाहिए कि साध्य एक ही होना चाहिए। यदि साध्य एक भी तो तो यह आवश्यक नहीं कि उसे प्राप्त करने के साधन भी समान होंगे। दरअसल साध्य एक ही होने पर भी काल और परिस्थिति के अनुकूल साधनों में भिन्नता भी हो सकती है। जिसके साध्य शुभ हैं और वे चाहते हैं कि उसका साध्य फूहड़ न कहलाए तो उन्हें दूसरे साधन अपनाने होंगे।

इस संबंधा में एक और बात का उल्लेख करना चाहूंगा। जैसा कि मैंने कहा, हिन्दुओं की जाति व्यवस्था को देखते हुए यह आवश्यक है कि यहां कि राजनीतिक व्यवस्था भिन्न होनी चाहिए और वह सामाजिक ढांचे के अनुरूप निर्धारित हो। बहुत से लोग इसे स्वीकार करते हैं परंतु तर्क देते हैं कि हिंदू समाज में जातियां तोड़ी जा सकती है। मैं इस बात को स्वीकार नहीं करता। जो यह कहते हैं वे सोचते हैं कि जाति कोई ऐसी संस्था है जैसे क्लब, नगरपालिका या काउंटी कौंसिल; यह एक बड़ी भूल है। जाति धर्म और धर्म संस्था के सिवाय कुछ भी हो सकता है। यह संस्थाकृत है परंतु जैसी इसकी रचना है, उसके परिप्रेक्ष्य में ऐसी कोई संस्था नहीं है। धर्म एक प्रवाह या ऐसी शक्ति है, जो हर व्यक्ति में रचा बसा है और व्यक्ति के चरित्र को प्रभावित करता है और उसके कार्य, व्यवहार और पंसद-नापंसद को निर्धारित करता है। ये पसंद-नापसंद, कार्य, व्यवहार ऐसी संस्था नहीं हो सकते, जिन पर कोई और रंग चढ़ सके। सीधे शब्दों में यह ''काली कमली'' है। यह ऐसी शक्ति है, ऐसा प्रवाह है, जिसे नियंत्रित करने के लिए उसकी काट भी होनी चाहिए। यदि सामाजिक राजनीति में घालमेल है ओर मुट्ठी भर लोगों के वर्चस्व पर नियंत्रण रखना है, बहुत से लोगों को हेयता की पीड़ा से बचाना है, तो यह आवश्यक है कि राजनीतिक संरचना ऐसी हो जो सामाजिक तत्वों के संभावित पूर्वाग्रहों को लगाम दे सकें, अन्याय को रोक सके।

अब तक मैंने सामान्य रूप से यह स्पष्ट किया है कि विशिष्ट प्रकृति वाले हिंदू समाज के लिए एक विशिष्ट प्रकृति को राजनीतिक व्यवस्था की क्यों आवश्यकता है और भारत के संविधान-निर्माता इन समस्याओं को अनदेखी क्यों नहीं कर सकते, जैसी समस्याएँ अन्य देशों के संविधान में सांप्रदायिक योजना को शामिल करना क्यों आवश्यक है और अछूतों के लिए सरकारी सेवाओं में स्थान क्यों आरक्षित किए जाएं और उनके लिए पृथक अवसर क्यों आवश्यक हैं। इन मांगों का औचित्य सहज और स्वाभाविक है। यह बात इस निर्विवाद तथ्य से उत्पन्न होती है कि इसी कारण हिंदुओं से अछूतों को अलग कर दिया गया है और वह भेदभाव अनावश्यक है। यह जन्मजात कटुता और तिरस्कार का मामला है। इस तिरस्कार और कटुता के लिए किसी साक्ष्य की आवश्यकता नहीं है। चिरंतन अस्पृश्यता का व्यवहार हिंदुओं और अछूतों के बीच कटुता का पर्याप्त साक्ष्य है। ऐसी कटुता देखते हुए यह असंभव है कि अछूतों से कहा जाए कि वे इस बात पर विश्वास कर लें कि अंग्रेजों और स्वाधीनता मिलने के बाद हिंदू उनके साथ न्याय करेंगे। जब अछूत यह कहते हैं कि वे हिंदुओं पर विश्वास नहीं करते तो कौन कह सकता है कि यह कोई गलत कथन नहीं है। हिन्दू उनके लिए उतना ही पराया है, जितना कोई यूरोपवासी बल्कि उससे भी बदतर बात तो यह है कि यूरोप वाले पराए होकर तटस्थ तो हैं हिंदू तो निर्लज्जता से अपने वर्ग का पक्ष-पोषक है और अछूतों के प्रति दंभ रखता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि युगों-युगों से हिंदुओं ने अछूतों को तिरस्कृत और अपमानित किया है, क्योंकि वह एक अलग और घृणित वर्ग का है बेशक वह दूसरी नस्ल का न भी हो। अपनी मान्यताओं के अनुरूप हिंदू अपने को अतिविशिष्ट वर्ग मानता है। वह अपने पूर्वाग्रहों के कारण अछूतों की आकांक्षाओं का कभी ध्यान नहीं रखता। उनसे वह कोई संबंध नहीं रखना चाहता और वह उनके हितों का विरोधी है। ऐसे लोगों के साथ अछूत क्यों बंधे रहें? अछूतों से यह कैसे कहा जा सकता है कि वे अपने हित ऐसे लोगों के हाथों में सौंप दें जो पूरी तरह उनके हितों और आंकाक्षाओं के विरोधी हैं, जो अछूतों की जीवंतता के प्रति सहानुभूति नहीं रखते, जिनकी उनके प्रति रूचि और मनोभावना नहीं है, जो उनकी अपेक्षाओं से खार खाते हैं, वे निश्चिंत रूप से उनके साथ न्याय नहीं करेंगे। उनसे भेद-भाव बरतेंगे और वे आज तक अपने धर्मादेशों के अनुसार अछूतों के विरूद्ध दुर्व्यवहार के प्रति लहजा महसूस नहीं करते बल्कि कदम कदम पर अमानवीय बर्ताव करते हैं। ऐसे लोगों से सुरक्षा का एक ही उपाय है। राजनीतिक अधिकार-जिनकी मांग है कि अछूतों को हिंदू बहुसंख्यकों के अत्याचारों से बचने के लिए संविधान में स्पष्ट व्याख्या की जाए। क्या सुरक्षा की ये मांग बेतुकी है?

अध्याय-10

हिन्दुओं और उनके मित्रों से कुछ प्रश्न

इस राजनैतिक विवाद में यह स्पष्ट हो जाता है कि हिंदू भिन्न-भिन्न संप्रदायों के साथ भिन्न-भिन्न बर्ताव करते हैं। भारत मे केवल अछूत ही अपने लिए सुरक्षा की मांग नहीं कर रहे हैं। अछूतों की तरह मुसलमानों और सिखों ने भी हिंदुओं के सामने अपनी मांग रखी हैं। किसी भी तरह यह नहीं कहा जा सकता कि मुसलमान और सिख निरीह अल्पसंख्यक हैं। इसके विपरीत वे भारत के अत्यंत शक्तिशाली समुदाय हैं। शैक्षिक दृष्टि से वे काफी विकसित हैं और आर्थिक दृष्टि से संपन्न हैं। उनकी सामाजिक हैसियत हिंदुओं की तरह काफी ऊंची है। उनके सुदृढ़ संगठन हैं और कोई हिंदू उन्हें तिरछी निगाह से देखने का दुस्साहस नहीं कर सकता। उन्हें बहुत कम हानि पहुंचाई जा सकती है।

मुसलमानों और सिखों की राजनीतिक मांग क्या हैं? उनका वर्णन करना इस समय संभव नहीं है। परंतु आम राय यह है कि वे काफी बेतुकी हैं और हिंदू उनके प्रति असंतुष्ट हैं। इसके विपरीत अछूतों की मांगें और शर्तें न्यायसंगत और मुसलमानों तथा सिखों की मांगों और शर्तों से भिन्न हैं। वे कमजोर निरीह और दीन-हीन अल्पसंख्यक हैं। वे सभी की कृपा पर निर्भर हैं और ऐसे कम अवसर नहीं आए हैं जब हिंदुओं, मुसलमानों और सिखों ने मिल कर इनका विरोध न किया हो। सभी अल्पसंख्यकों में इन्हें सबसे अधिक संरक्षण और सुदृढ़ सुरक्षा की जरूरत है। इनकी मांगें मामूली सी हैं और उन्हें फालतू आश्वासन भी नहीं चाहिए, जैसा कि मुसलमान और सिख चाहते हैं। मुसलमानों, सिखों और अछूतों की मांगों पर हिंदुओं की क्या प्रतिक्रिया है? हालांकि मुसलमानों और सिखों की मांगें बेंतुकी हैं, परंतु हिंदु उन पर खास तौर से मुसलमानों से केवल संबंध ही सुधारना नहीं चाहते बल्कि उनके प्रति नरम भी हैं,

यहां तक कि उदार भी हैं। राजनीतिक लाभ के लिए श्री राजगोपालचारी के राजनीतिक दावपेंच की याद अब तक ताजा है। वे अचानक मुस्लिम लीग के समर्थक बन गए हैं और उन्होंने अपने ही लोगों तथा पुराने मित्रों के साथ युद्ध की घोषणा क्यों कर दी है? मुसलमानों की न्यायसंगत मांगों के लिए नहीं; बल्कि पाकिस्तान बनाने की बेतुकी मांग के लिए। अछूतों की मांग पर राजगोपालचारी क्या कहते हैं? जहां तक मैं समता हूं, उनके होठ सिले हुए हैं। उन्हें तो शायद यह तक पता नहीं कि इस देश में 6 करोड़ अछूत हैं। वे भी मुसलमानों की तरह अपने लिए राजनीतिक संरक्षण चाहते हैं। श्री राजगोपालचारी की यह सोची समझी चुप्पी और घोर उपेक्षा हिंदुओं की प्रवृति है। अछूतों की राजनीतिक मांगों का हिंदू एक पूरी हठधर्मिता और बदहवासी के साथ विरोध कर रहे हैं। प्रेस उनकी पिट्ठू है और वे अछूतों की मांग की उपेक्षा करने के सुनियोजित प्रयत्न करते हें। जब वे उनकी अवहेलना करने में विफल हो जाते हैं, तो उनके नेताओं को खरीद लेते हैं और जिस नेता के बारे में सोचते हैं कि उसे खरीदा नहीं जा सकता तो उसे गालियां बकने तक पर उतर आते हैं और उसके बारे में गलत अफवाहें फैलाते हैं। धौंसपट्टी देते हैं और जहां तक उनका वश चलता है, उसे दबाने और उसका मुंह बंद करने की कोशिश करते हैं। ऐसा नेता जो अछूतों के हितों के लिए जूझने को कटिबद्ध है, उसे और उसके अनुयायियों को गद्दार के रूप में पेश कर, उसकी निंदा की जाती है। अछूतों की राजनीतिक मांग से हिंदू इतने क्षुब्ध हो जाते हैं कि वे अपने क्रोध के कारण यह नहीं सोचते कि अछूत कितने उदार हैं कि वे जरा से राजनीतिक संरक्षण के बदले हिंदू बहुसंख्यकों का शासन स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। हिंदू इस बात से अवगत नहीं हैं कि संयुक्त आयरलैंड पर रेडमोंड और कारसन की बातचीत के दौरान रेडमोंड ने कारसन से क्या कहा था। यह घटना उल्लेखनीय के लिए भी संरक्षण मांगें, मैं उन्हे देने के लिए तैयार हूँ। कारसन का उत्तर बड़ा अक्खड़ और कठोर था जिसने विचार के लिए समय मांगे बिना कहा -- तुम्हारे संरक्षण भाड़ में जाए, मैं तुम्हारे अधीन नहीं रहना चाहता।'' हिंदुओं को आभारी होना चाहिए कि अछूतों ने कारसन जैसा व्यवहार नहीं किया है। पर आभारी होने के बजाए वे अछूतों पर भिन्नाते हैं कि वे राजनीतिक संरक्षण मांग रहे हैं। हिंदुओं की नजर में अछूतों को अधिकार मांगने का कोई हक है। विभिन्न समुदायों की राजनीतिक मांगों पर हिंदुओं का भिन्न-भिन्न रवैया क्यों है? इससे तीन बातें प्रकट होती हैं: (1) वे सारे अधिकार स्वयं समेट लेना चाहते है? (2) वे अपनी राजनैतिक संस्थाओं को न्याय पर आधारित रखने को तैयार नहीं, (3) वे धौंस-पट्टी के आगे घुटने टेक देते हैं, परंतु न्याय की पुकार नहीं सुनते।

हिंदुओं की यह मनोवृत्ति भारतीय राजनीति का दुखद पक्ष है। भारतीय राजनीति

में अस्पृश्यता ही अकेला दुखद पक्ष नहीं है। इतना ही दुखद पक्ष एक और भी है। वह है विदेशों में हिंदुओं के दोस्त। हिंदुओं ने प्रचार की चालबाजी से दुनिया भर में खास तौर से स्वतंत्रता की भूमि अमरीका में बहुत से मित्र पैदा कर लिए हैं। दुखद बात यह है कि हिंदुओं के ये दोस्त यह सोचे बिना हिंदुओं का समर्थन कर रहे हैं कि क्या वह वही पक्ष है जिसका समर्थन करना न्याय का तकाजा है। जहां तक मैं समझता हूं, हिंदुओं के किसी अमरीकी मित्र ने अभी तक यह नहीं पूछा है कि हिंदू चाहते क्या हैं? वे स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे हैं या सत्ता के लिए? यदि हिंदू सत्ता के लिए लड़ रहे हैं, तो क्या अमरीकी दोस्तों का हिंदुओं की सहायता करना न्यायसंगत है? यदि हिंदू स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे हैं, तो क्या उनसे अपना लक्ष्य घोषित करने के लिए नहीं कहा जाना चाहिए? अमरीकी कम से कम इतना तो कर सकते हैं। यदि अमरीकी मित्र हिंदुओं के आह्वान पर सक्रिय होना ठीक मानते हैं, तो अमरीकियों को यह बताना आवश्यक है कि स्वतंत्रता के लिए हिंदुओं के पक्ष में बिना सोचे समझे अंधाधुंध समर्थन करने में वे क्या गलती कर रहे हैं। मेरा कहना वही हैं जो स्वयं हिंदुओं ने कहा है। जब युद्ध शुरू हुआ था, तो कांग्रेसी और कांग्रेस से बाहर के हिंदुओं ने मांग की थी कि ब्रिटेन को युद्ध में अपने लक्ष्यों को घोषित करना चाहिए। प्रति दिन अंग्रेजों से कहा गया ''यदि आप हमारी सहायता चाहते हैं, तो हमें यह बताओं कि आप किसलिए लड़ रहे हैं? यदि आप स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे हैं, तो हम बताओं कि क्या आप हमें भी स्वतंत्रता देंगे जिसके लिए आप यह युद्ध लड़ रहे हैं। एक समय था, जब हिंदू ब्रिटेन के इस आश्वासन पर संतुष्ट हो जाने को तैयार थे कि भारत का उस स्वतंत्रता युद्ध से लाभ होगा, जो वे लड़ रहे हैं। उन्होंने एक कदम आगे बढ़ाया हैं। अब वे मात्र अंग्रेजों के वायदे से ही संतुष्ट नहीं हैं। या इसे कांग्रेस के शब्दों में ही कहें ''वे इस बैंक के पेशगी चेक लेने के लिए तैयार नहीं हैं, जो डूब रहा है।'' वे चाहते हैं युद्ध के लिए भारतीयों को स्वैच्छिक समर्थन से पूर्व ही तुरंत स्वतंत्रता दे दी जाए। श्री गांधी का नया नारा ''भारत छोड़ो'' महत्वपूर्ण है। श्री चर्चिल इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए जिम्मेदार हैं, उन्होंने जवाब दिया है कि युद्ध का उद्देश्य शत्रु पर विजय पाना है। हिंदु इससे संतुष्ट नहीं है। उन्होंने उनसे फिर पूछा -- ''जब आप विजय प्राप्त कर लेंगे, तो आप क्या करेंगें? युद्ध के बाद आपकी सामाजिक व्यवस्था क्या होगी?'' जब श्री चर्चिल ने उत्तर दिया कि आशा के अनुसार युद्ध के बाद परंपरागत ब्रिटेन को बहाल किया जाएगा, तो इस उत्तर से तूफान उठ खड़ा हुआ। मैं इस बात से सहमत हूं कि ये जायज सवाल थे। परंतु हिंदुओं के दोस्त ऐसा नहीं सोचते कि श्री चर्चिल से यदि ऐसा सवाल पूछा जाना जायज है, तो क्या श्री गांधी और हिंदुओं से वही सवाल पूछा जाना जायज

नहीं है। अंग्रेजों ने हिटलर के साथ युद्ध छेड़ा। श्री गांधी ने अंग्रेजों के विरूद्ध युद्ध की घोषणा की है। अंग्रेजों का एक साम्राज्य है। हिंदुओं का भी है, क्योंकि हिंदुत्व स्वामियों के आधिपत्य में हैं? यदि चर्चिल से युद्ध का उद्देश्य घोषित करने के लिए कहा जाता है। तो श्री गांधी और हिंदुओं से उनके संग्राम का उद्देश्य क्यों नहीं पूछा जा सकता? दोनों का कहना है कि उनका संग्राम स्वतंत्रता के लिए है। यदि यह बात है तो दोनों का यह कर्तव्य है कि वे संग्राम के उद्देश्यों को घोषित करें। ब्रिटेन से युद्ध जीत लेने के बाद श्री गांधी का उद्देश्य क्या होगा? क्या जिस स्वतंत्रा की उन्हें आशा है, उसके बाद वे अछूतों को भी स्वतंत्र कर देंगे या हिंदुओं को आज से भी अधिक अधिकार सौंप देंगं और अछूतों को बंधक बनाए रखेंगे? क्या श्री गांधी और हिंदू नई व्यवस्था कायम करेंगे या परंपरागत हिंदू भारत की पुनर्स्थापना से संतुष्ट हो जाएंगे, जिसमें जाति प्रथा और अस्पृश्यता मौजूद होगी और स्वतंत्रता, समानता तथा भ्रातृत्व को दरकिनार कर दिया जाएगा? मुझे सोचना चाहिए कि यह सवाल तथाकथित स्वाधीनता संग्राम में सहायता करने वाले अमरीकी दोस्तों को श्री गांधी और हिंदुओं से पूछना चाहिए। ये प्रश्न और स्पष्ट है। केवल इसी के उत्तर से अमरीकी मित्रों को यह पता चलेगा कि श्री गांधी का संग्राम स्वतंत्रता के लिए है या सत्ता के लिए। ये प्रश्न केवल स्पष्ट और वैध ही नहीं हैं, आवश्यक भी है। जो हिंदुओं को जानते हैं उनके लिए इनका औचित्य है। हिंदू अंर्तजात और कट्टर अनुदारवादी हैं और उनका स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व के अनुरूप नहीं। निस्संदेह विश्व में सर्वत्र लोकतंत्र में असमानता मौजूद है पर अन्यत्र परिस्थितियों पर आधारित होती है, उसे धर्म से मान्यता नहीं मिलती। हिंदुओं की बात अलग है। हिंदू समाज में केवल असमानता ही नहीं, बल्कि असमानता हिंदू धर्म का प्राण है। हिंदुओं की समानता में रुचि नहीं है। उनकी अभिरुचि और प्रवृत्ति सभी व्यक्तियों के समान मूल्य के लोकतांत्रिक सिद्धांत के विरुद्ध है। प्रत्येक हिंदू धार्मिक दृष्टि से अनुदार और राजनीतिक दृष्टि से क्रांतिकारी है। श्री गांधी भी इस नियम का अपवाद नहीं है। दुनियां के सामने वे उदार बनते हैं, परंतु उनका उदारवाद एक मुखौटा है जो एकदम झीना-झीना है। आप कुरेदिए तो पता चलेगा कि कि उनके उदारवाद में अभिजात अनुदारवाद भरा है। वे जाति को कोसते हैं। वे कट्टर हिंदू हैं, जो हिंदू धर्म को मानते हैं। देखिए हिंदू 1976 की स्वाधीनता की प्रसिद्ध अमरीकी घोषणा को किस प्रकार लेते हैं। जब वह स्वाधीनता का यह अंश पढ़ते हैं तो खुशी से झूठ उठते हैं -

> ''कि जब कोई सरकार इन उद्देश्यों का विध्वंश करने लगे तो जनता को यह अधिकार है कि उसे बदल डाले और और नई सरकार बनाए, जिसकी आधारशिला ऐसे सिद्धांतों पर रखी जाये और उसकी शक्तियां ऐसी निश्चित की जायें, जिनसे

उनके सरंक्षण और खुशहाली का मार्ग प्रशस्त हो सकें।''

परन्तु वे यहीं विराम लगा देते हैं। वे उस घोषणा के पूर्व अंश की परवाह नहीं करते जिसमें कहा गया है –

''हम समझते हैं कि यह तथ्य स्वयंसिद्ध है कि सभी मनुष्य समान बनाये गये हैं, नियंता ने उन्हें अविच्छिन्न अधिकार प्रदान किए हैं वे हैं, जीवन, स्वतंत्रता और प्रसन्नता का मार्ग। इन अधिकारों की प्राप्ति हेतु सरकार का गठन होता है जो प्रजा से न्यायसंगत अधिकार प्राप्त करती है।''

इसमें कोई संदेह नहीं कि इस घोषणा–पत्र को लागू करने से अमरीकी इतिहास में एक दुखद घटना घटी है। इस दस्तावेज के बारे में दो विचारधाराएं हैं। कुछ समझते हैं कि यह महान आध्यात्मिक अभिलेख है। दूसरों का कहना है है कि इसने कई असतयों को शाश्वत बना दिया है। मानवीय स्वाधीनता का सिद्धांत किसी तरह नीग्रो जन पर लागू नहीं किया गया है। फिर भी यह महत्त्वपूर्ण बात है कि घोषणा–पत्र में उसे शामिल तो किया गया है। इसमें कोई संदेह नहीं है और निश्चित रूप से इस घोषणा–पत्र के लेखक जेफरसन की आस्था पर भी संदेह नहीं किया जा सकता। वे इस बात को कभी नहीं भूल सके कि एक लम्बे सिद्धांत की घोषणा के बाद उसके पालन पर उनके देश ने कन्नी काट ली। उन्होंने लिखा है : मुझे अपने देशवासियों के बारे में अफसोस है।'' नीग्रो जन को इससे सुकुन नहीं मिलता। परंतु यह भी कम संतोष की बात नहीं है कि देश की आत्मा बिल्कुल निर्जीव नहीं हुई है और धार्मिक हीनता की भावना एक दिन मिट जाएगी। नीग्रो इसका मखौल उड़ा सकते हैं। परंतु सच्चाई यह है कि अछूत हिंदुओं से इतनी सी बात की उपेक्षा भी नहीं कर सकते। लोगों को आज इस बात पर गर्व है कि हिंदु एक संगठित समाज है। परंतु भारत के अछूतों को इस बात पर आश्चर्य होता है। यह सुकून के बजाए दर्द है -- क्योंकि नीग्रो लोगों के लिए अमरीका में पूरा दक्षिण एकजूट है। क्या हिंदुओं में कोई ऐसा व्यक्ति मिलता है, जिसमें लज्जा और ग्लानि की ऐसी भावना मौजूद हो जैसी जेफरसन में थी? मैं सोच सकता हूं कि दुनिया के सामने अपनी आजादी की मांग पेश करने से पहले हिंदू अपने ऊपर लगे अस्पृश्यता के कंलंक से शर्मिंदा होते है। वे आजादी की दुहाई देते हैं -- अफसोस है उन्हें समर्थन मिलता है -- यह इस बात का सबूत है कि उनकी आत्मा मर चुकी है कि वे धार्मिक अनादर का अहसास नहीं करते और उनकी दृष्टि में अस्पृश्यता न तो नैतिक पाप है और न ही सामाजिक अपराध। उनके लिए बस यह क्रिकेट या हाकी का खेल है। श्री गांधी के मित्र निस्संदेह उनसे उनके कार्यों के विषय में पूछेंगे। परंतु श्री गांधी ने हिंदू समाज में सुधार के लिए क्या किया है कि उनके कृतित्व ओर व्यक्तित्व में लोकतांत्रिक लोगों को आशा और आश्वासन

की झलक दिखाई दे? उनके मित्रों को हरिजन सेवक संघ का हवाला दिया जाता है और वे पूछते हैं कि क्या ''हरिजन सेवक संघ हरिजन उत्थान का कार्य नहीं कर रहा?'' क्या ऐसा है। हरिजन सेवक संघ का उद्देश्य क्या है? क्या यह अछूतों को इसके लिए तैयार करता है कि वे हिंदू स्वामियों से मुक्ति पाएं और उन्हें सामाजिक और राजनीतिक समानता प्राप्त हो? श्री गांधी के सामने कभी ऐसा लक्ष्य नहीं था, और वे कभी ऐसा करना नहीं चाहते। मैं कहता हूं कि वे ऐसा नहीं कर सकते। यह काम तो लोकतंत्रवादी और क्रान्तिकारी का है। गांधी दोनों में से कुछ नहीं हैं। वे जन्म से भी और विश्वास से भी अनुदारवादी हैं। हरिजन सेवक संघ का कार्य अछूतों का उत्थान नहीं है। जैसा कि प्रत्येक स्वाभिमानी अछूत जानता है, उनका मुख्य उद्देश्य भारत को हिंदुओं और हिंदुत्व के लिए सुरक्षित रखना है। वे अछूतों की लड़ाई निश्चित रूप से नहीं लड़ रहे। इसके विपरीत हरिजन सेवक संघ के माध्यम से शुद्र अछूतों को शुद्र उपहार बांट कर उन्हें खरीद रहे हैं। उन्हें नाकारा बना रहे हैं। अछूतों के विरोध को अशक्त कर रहे हैं जिसके विषय में वे जानते हैं कि वे जाति प्रथा को पंगु बना देंगे और भारत में वास्तविक लोकतंत्र स्थापित करेंगे। श्री गांधी हिंदुत्व और हिंदुओं को जीवंत रखना चाहते हैं। श्री गांधी अछूतों को हिंदू ही रखना चाहते हैं। पर कैसा? एक सहचर के रूप में नहीं पद-दलितों के रूप में। श्री गांधी अछूतों के प्रति दयालु नहीं हैं, बल्कि प्यार के भुलावों में वे उन्हें और हिंदुओं से अलग तथा स्वतंत्र रहने के उनके आंदोलन को मटियामेट करना चाहते हैं।

हरिजन सेवक संघ उनके उन हथकंड़ों में से एक है, जिससे उनका प्रपंच चल रहा है।

अब श्री जवाहरलाल नेहरु पर आते हैं। वे जेफरसन के घोषणा-पत्र से प्रेरित हैं। परंतु क्या उन्होंने कभी 6 करोड़ अछूतों की स्थिति पर लज्जा अथवा पश्चाताप प्रकट किया? क्या उन्होंने अपने साहित्य में उस पर प्रकाश डाला है? आप चाहे तो भारत के युवाओं को देखिए। विश्वविद्यालयों से भरे छात्र जो पंडित नेहरु का अनुसरण करते हैं, वे सदा अंग्रेजों के विरूद्ध संग्राम में शामिल होने के लिए तैयार रहते हैं। परन्तु ऊंचे हिंदू घरानों के इन बच्चों ने अपने पूर्वजों के अछूतों के साथ किए गए दुर्व्यवहार को समाप्त करने के लिए क्या किया है? सैंकड़ों हिंदू युवक राजनीतिक प्रोपेगंडा में शामिल होने के लिए मिल जायेंगे, परन्तु एक भी ऐसा युवक नहीं मिल सकता, जिसने जाति प्रथा तोड़ने या अस्पृश्यता मिटाने का बीड़ा उठाया हो। हिंदू-मानस के लिए लोकतांत्रिक सिद्धांत जीवित रहते हैं। ऐसे अनुदार हाथों में लोकतंत्र और स्वतंत्रता सौंपना सबसे बड़ी गलती होगी, जो लोकतंत्रवादी कर सकते हैं। हिंदुओं के अमरीकी दोस्तों के लिए श्री गांधी और हिंदुओं से कहना चाहिए कि वे अपने संघर्ष

के उद्देश्य घोषित करें, जिससे वे आश्वस्त हो सकें कि अंग्रेजी के विरूद्ध हिंदुओं का संघर्ष वास्तव में स्वतंत्रता संघर्ष है। कांग्रेस और हिंदू सवाल पूछने वाले विदेशी मित्रों को कांग्रेस के अल्पसंख्यक अधिकार संबंधी प्रस्ताव का हवाला देंगे। परन्तु मैं हिंदुओं के अमरीकी मित्रों को चेतावनी देना चाहता हूँ कि वे अल्पसंख्यकों को अधिकार देने संबंधी घोषणा की चकाचौंध पर न जाए। अल्पसंख्यकों के अधिकारों की घोषणा एक बात है और उन्हें लागू करना दूसरी और हिंदुओं के मित्र यदि वे सचमुच स्वतंत्रता प्रेमी हैं, तो वे सीधे परिपालन पर बल क्यों नहीं देते? क्या हिंदु यह नहीं कह रहे कि वे ब्रिटेन से स्वतंत्रता की मात्र घोषणा से संतुष्ट नहीं होंगे? क्या वे तुरंत परिपालन के लिए नहीं कह रहे? यदि वे ब्रिटेन से यह अपेक्षा करते हैं कि वे अपने युद्ध उद्देश्यों को लागू करें तो हिंदू अपने संघर्ष के उद्देश्य घोषित करने के लिए क्यों तैयार नहीं हैं? मुझे विश्वास है कि हिंदुओं के अमरकी मित्र हिंदुओं के इस प्रचार से गुमराह नहीं होंगे कि अंग्रेजों के खिलाफ हिंदुओं का यह संघर्ष स्वतंत्रता संघर्ष है। हिंदुओं की सहायता करने से पहले उन्हें स्वयं को संतुष्ट कर लेना चाहिए कि जो हिंदू यह आग्रह कर रहे हैं कि अंग्रेजों के खिलाफ उनका संघर्ष स्वतंत्रता के लिए संघर्ष है, वे ही कहीं अछूतों जैसे करोड़ों भारतीयों की स्वतंत्रता के शत्रु न बन जायें। यही दलील मैं भारत के 6 करोड़ अछूतों की ओर से दे रहा हूं और सबसे बड़ी बात यह है कि अमरीकी मित्र कहीं यह न सोच बैठें कि संविधान में संतुलन और नियंत्रण भारत की परिस्थितियों में निगरानी और नियंत्रण की मांग आवश्यक नहीं है क्योंकि संघर्ष जनसाधारण द्वारा चलाया जा रहा है और यह स्वतंत्रता के लिए है। लोकतंत्र और स्वतंत्रता प्रेमियों को यह नहीं भुलना चाहिए कि जान एडम्स ने क्या कहा है –

> ''हमने जितना इतिहास अब तक पढ़ा है, साक्ष्य के लिए उन सबका संदर्भ देना संभव नहीं है कि जब लोगों पर नियंत्रण नहीं रखा गया तो वे अन्यायी, अत्याचारी, उत्पीड़क, पाश्विक और क्रूर बन बैठे जैसे कोई राजा या नियंत्रणहीन सत्ता प्राप्त सीनेट बन जाती है : बहुसंख्यक सदा और बिना अपवाद के अल्पसंख्यकों पर हावी हो गए है।''

सभी बहुसंख्यकों पर संतुलन और नियंत्रण रखा जाए, यह हिंदुओं के बारे में कैसे हो सकता है?

परिशिष्ट
के बारे में टिप्पण

''कांग्रेस और गांधी ने अस्पृश्यों के लिए क्या किया' नामक प्रस्तुत खंड इसके 1945 में प्रकाशित प्रथम संस्करण का पुनर्मुद्रित रूप है। डा. अम्बेडकर ने 1946 में इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित किया था। इसमें महत्वपूर्ण परिवर्धनों और सुधारों के रूप में कतिपय परिवर्तन देखने को मिले है। ये परिवर्तन अध्याय 9 में शेष किए गए हैं जिसे हम खंड के साथ परिशिष्ट के रूप में जोड़ा जा रहा है। शेष पाठ में कोई परिवर्तन नहीं है।''

परिशिष्ट

नवम् अध्याय

विदेशियों के लिए दलील

दास्ता का दर्द बर्दास्त नहीं

I

सारी दुनिया जानती है कि कुछ अपवादों को छोड़ कर अधिकतर सभी विदेशी जो भारत के राजनैतिक मामलों में रूचि लेते हैं वे सभी कांग्रेस के पक्षधर हैं। यह मुश्किल बात है, जिससे देश की अन्य राजनैतिक पार्टियां - जैसे मुस्लिम लीग, जो मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करने का दावा करती हैं, जस्टिस पार्टी जिसमें अब कोई जान नहीं है, जिसे गैर-ब्राह्मण दल के नाम से भी जाना जाता है और भारतीय परिगणित जाति संघ जो अछूतों का प्रतिनिधित्व करने का दावा करती है, के लिए स्वभावत: से ही परेशानी पैदा हो गई है ओर वे सभी पार्टियां विदेशियों से समर्थन की अपील करती है परंतु विदेशी लोग उनकी अपील सहानुभूति के तौर पर भी सुनने को तैयार नहीं। विदेशी लोग कांग्रेस का समर्थन क्यों करते हैं और अन्य पार्टियों का क्यों नहीं। विदेशी लोग कांग्रेस का समर्थन क्यों करते हैं और अन्य पार्टियों का क्यों नहीं? विदेशियों ने अपने इस व्यवहार के दो कारण गिनाए। कांग्रेस को समर्थन देने का एक कारण यह है कि उनके विचार में भारतीय नागरिकों का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था केवल कांग्रेस हैं और वही संस्था भारत के नाम पर आवाज उठा रही है, यहां तक कि अछूतों के संदर्भ में भी। क्या उनकी सोच सही है?

यह मानना होगा कि ऐसी धारणा बनने के पीछे कुछ परिस्थितियां मौजूद है। पहली और प्रमुख परिस्थिति यह है कि भारतीय प्रेस द्वारा कांग्रेस के पक्ष में प्रोपेगंडा किया जाता है। भारत के समाचार-पत्र सें कांग्रेस की मिलीभगत है। उनका विश्वास है कि कांग्रेस कभी गलती नहीं कर सकती, प्रेस किसी ऐसी सूचना को छापना गंवारा

नहीं करती, जो कांग्रेस की प्रतिष्ठा तथा उसकी विचारधारा के विरूद्ध हो। विदेशियों की दृष्टि में केवल प्रेस ही भारत के राजनैतिक मामलों का सूचना का माध्यम है। प्रेस के कोलाहल के कारण इंग्लैंड और अमरीका के लोग मात्र एक बात समझ पाते हैं कि कांग्रेस ही भारत की प्रतिनिधि संस्था है, यहां तक कि अछूतों की भी।

इस प्रोपेगंडा के प्रभाव का कारण यह है कि अछूत इस का जवाब प्रोपेगंडा से नहीं दे सकते। वे कांगेसी दावों का जवाब देने के लिए प्रचार नहीं कर सकते। अछूतों की ओर से इसके कई स्पष्टीकरण हैं।

अछूतों का अपना कोई समाचार पत्र नहीं है और कांग्रेस का प्रेस उनके लिए बंद है। उसने अछूतों का रत्तीभर भी प्रचार करने की कसम खा रखी है। अछूत अपना प्रेस स्थापित नहीं कर सकते। कोई भी समाचार पत्र विज्ञापन राशि के नहीं चल सकता। विज्ञापन राशि केवल व्यावसायिक विज्ञापनों से आती है। भारत के छोटे बड़े व्यवसायी विज्ञापनों से आती है। भारत के छोटे व्यवसायी कांग्रेस से जुड़े हैं, जो गैर-कांग्रेसी संस्था का पक्ष नहीं ले सकते। भारत में असोसिएटेड प्रेस का स्टाफ, जो भारत की समाचार एजेंसी है, पूर्णतया मद्रासी ब्राह्मणों से भरा पड़ा है। वास्तव में भारत का संपूर्ण प्रेस उन्हीं की मुट्ठी में हैं और वह पूर्णतया कांग्रेस का पिट्ठू है। सुज्ञात कारणों से वह कांग्रेस का समर्थक है, और कांग्रेस के विरूद्ध समाचार को नहीं छाप सकता। यही साधन हैं जो अछूतों की पहुंच से बाहर हैं।

परन्तु यह सच है कि बहुत हद तक स्वयं अछूतों में प्रचार करने की प्रवृत्ति का न होना भी एक कारण है। प्रचार करने की प्रवृति का न होना उनकी देशभक्ति के कारण भी है कि कहीं ऐसा न हो कि कोई बात ऐसी हो जाए, जिससे बाहर देश की प्रतिष्ठा पर आंच आए। भारत की राजनीति के दो भिन्न-भिन्न पहलू हैं जिसका विदेशी राजनीति और संवैधानिक राजनीति के रूप के रूप में भेद किया जा सकता है। भारत की विदेशी राजनीति ब्रिटिश साम्राज्य से भारत को आजादी प्राप्त करने के संबंध में है, जबकि संवैधानिक राजनीति आजाद भारत के लिए भावी संविधान से संबंधित है। समीक्षकों के लिए दोनों वास्तव में एक दूसरे से भिन्न हैं। परंतु अछूतों को डर है कि यद्यपि भारतीय राजनीति के दो भिन्न पहलू हैं, जो विदेशी इस विषय में महत्व रखते हैं और जिन्हें सावधानी से समझाना है, वे इन्हें अलग-अलग दृष्टि से नहीं देख सकते और संवैधानिक नीतियों पर मतभेद रख सकते हैं। इसलिए अछूत कांग्रेसी प्रचार पर चुप्पी साधे हुए हैं। इससे उनके प्रचार का जवाब नहीं मिलता।

दरअसल कांग्रेस यह स्वीकार नहीं करती कि अछूत कांग्रेस द्वारा अपने विरूद्ध किए जा रहे प्रचार पर चुप इसलिए है कि इसके पीछे अछूतों की देशभक्ति की

भावना है। सच्चाई यह है कि अछूतों की चुप्पी और चुनौती न देने के कारण ही आम धारणा बन गई है कि कांग्रेस अछूतों सहित सबका प्रतिनिधित्व करती है। उपरोक्त स्पष्टीकरण से पता चलता है कि ऐसी परिस्थितियां बन गई हैं जिनसे यह धारणा बनी है कि कांग्रेस ही सबकी प्रतिनिधि है, यहां तक कि अछूतों की भी है।

इस धारणा की पुष्टि 1937 में चुनावों में नहीं हुई कि कांग्रेस सबका प्रतिनिधित्व करती है। उसकी पोल इन चुनावों में खुल गई। यह इस पुस्तक के पिछले भाग में वर्णन किया गया है। सामान्य रूप से और विशेष रूप से भी कांग्रेस के इस दावे पर कि वह अछूतों का प्रतिनिधित्व करती है, यदि विदेशी ध्यान देंगे, तो उन्हें यह पता चल जाएगा कि प्रोपेगंडा सच्चाई से कितना परे है। कांग्रेस की प्रतिनिधित्व के दावे की परीक्षा नहीं हुई थी, तो विदेशी कह सकते थे कि वे प्रचार से प्रभावित हैं, परंतु 1937 के चुनावों में कांग्रेस की परीक्षा हो गई। उससे चुनाव के जो परिणाम सामने आए उनको देखते हुए आशा की जानी चाहिए कि विदेशी अपनी यह धारणा बदल लेंगे कि कांग्रेस ही सबका प्रतिनिधित्व करती है, यहां तक कि अछूतों को भी और यह अहसास होगा कि भारत या समाज में कांग्रेस के अतिरिक्त अन्य पार्टियां भी हैं, उनको भी अपनी बात कहने का हक है।

II

विदेशियों का कांग्रेस को समर्थन देने का एक दूसरा कारण है। वह है कांग्रेस की और अन्य दलों की प्रदर्शनात्मक गतिविधियां। उनकी दृष्टि में कांग्रेस सविनय अवज्ञा आंदोलन करके विदेशी सरकार द्वारा बनाए कानून का उल्लंघन करके, करों का भुगतान रूकवा कर अदालतों में गिरफ्तारी देकर, सरकार में असहयोग करने का प्रचार करके, कार्यालयों का बहिष्कार करके तथा देश की आजादी के लिए आत्म-बलिदान एवं त्याग का प्रचार करके ब्रिटिश सरकार से लड़ने में जुटी है। दूसरी ओर, विदेशियों की निगाह में कांग्रेस के अतिरिक्त अन्य पार्टियों की इसमें कोई रूचि नहीं है। वे निष्क्रिय हैं और कांग्रेस स्वतंत्रता-संग्राम में भाग नहीं ले रही। इन सबसे विदेशी यह निष्कर्ष निकालते हैं कि कांग्रेस स्वतंत्रताप्रेमी के रूप में देश की आजादी के लिए लड़ाई लड़ रही है, जबकि अन्य दल उदासीन हैं, चाहे बाधक न भी हों। इसलिए स्वतंत्रता-प्रेमी होने के नाते वे कांग्रेस का समर्थन करते हैं, जो अन्य दलों की अपेक्षा स्वतंत्रता संग्राम में लगी है। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। परंतु एक प्रश्न उत्पन्न होता है कांग्रेस के पक्ष में यह बात स्वतंत्रता संघर्ष भारत की जनता को स्वाधीनता दिलाएगा। यदि यह सम्मोहन या क्रांति है, तो मुझे खेद है कि अध्याय 7 में मेरा स्पष्टीकरण कि अछूत कांग्रेस के स्वतंत्रता संघर्ष में क्यों शामिल नहीं हुए, विदेशियों को वांछित

रूप से प्रभावित नहीं कर पाया है। परंतु इस पर मैं उनके साथ विवाद उत्पन्न करना नहीं चाहता। क्योंकि यह बात समझी जा सकती है कि उस अध्याय को पढ़ने के बाद कोई विदेशी कह सकता है कि मैंने यह कारण तो बताया है कि अछूत स्वतंत्रता संघर्ष में शामिल क्यों नहीं हुए किंतु इसका कोई आधार नहीं बताया गया है कि हम उस संस्था का संस्था का समर्थन क्यों नहीं कर रहे जो स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रही है।

यदि कांग्रेस के समर्थन का आधार दूसरी स्थिति है, तो यह अलग बात है। तब यह आवश्यक हो जाता है कि उनकी प्रवृति की तार्किकता का निरूपण करें और उन्हें गलती न करे दें।

आमतौर से जो व्यक्ति अपने पत्ते नहीं खोलता और स्पष्ट तथा निश्चित रुख नहीं दिखाता ताकि उसकी ईमानदारी का परिचय मिल सके, जो लोगों का दिल नहीं जीतता और अपनी मंशा पर संदेह रखने वालों से सहयोग नहीं लेता उस पर कोई विश्वास नहीं करेगा। कांग्रेस पर भी यही नियम लागू होना चाहिए परंतु जैसा कि मैंने अध्याय 7 में कहा है, कांग्रेस ने उस लोकतंत्र का स्वरूप अभी स्पष्ट नहीं किया है, जिसे वह भारत में लागू करना चाहती है। यह भी स्पष्ट नहीं किया है कि पराधीन वर्गों की विशेष रूप से उसमें अछूतों की क्या स्थिति होगी। दरअसल अछूतों और अन्य अल्पसंख्यक वर्गों की अनवरत मांग के बावजूद उसने वह प्रारूप पेश नहीं किया है। ऐसी धारणा के अभाव में विदेशियों के बारे में यह विचित्र सा लगता है कि वे इस आधार पर कांग्रेस का समर्थन करें कि वह लोकतंत्र की हामी है।

यह समझने का कई आधार निश्चित रूप से नहीं है कि कांग्रेस भारत के लोकतंत्र की स्थापना का आयोजन कर रही है। ऐसा निष्कर्ष मात्र इसी बात से नहीं निकल सकता कि कांग्रेस स्वतंत्रता संघर्ष में जुटी है। इससे पूर्व कि वे किसी निष्कर्ष पर पहुंचे उनका कर्तव्य है कि वे एक और अन्य प्रश्न पूछें कि कांग्रेस किसकी आजादी के लिए लड़ रही है? अपेक्षाकृत इस प्रश्न के कि क्या कांग्रेस किसी की आजादी के लिए लड़ रही है? यह एक प्रत्यक्ष और आवश्यक प्रश्न है ओर किसी भी स्वतंत्रता प्रेमी की यह गलती होगी कि वह सच्चाई जानने पर जोर दिए बिना कांग्रेस का समर्थन करे। परन्तु जो विदेशी कांग्रेस के पक्षधर हैं, वे ऐसे प्रश्न उठाने की परवाह नहीं करते। सोचने वाले को भी यह सोचना चाहिए कि वह यह प्रश्न स्वभाविक रूप से उठाए और उस पर जोर भी दे और यदि वह प्रश्न उठाएगा और उस पर जोर देगा तो मुझे विश्वास है कि उसे भरपूर सबूत मिलेंगे कि कांग्रेस लोकतंत्र के लिए कार्य नहीं कर रही है बल्कि प्राचीन हिंदू धर्म की पुनर्स्थापना के लिए काम कर कर रही है जिसमें वंशानुगत शासक वर्ग हो और वंशानुगत दास।

मेहनतकश जातियों विशेष रूप से अछूतों के हितचिंतन संबंधी विदेशी की प्रवृत्ति एक महत्वपूर्ण बात है और कोई भी पक्ष इसे विलक्षणता मान कर खारिज नहीं कर सकता। अछूतों का प्रतिनिधित्व करने वाले के लिए यह आवश्यक है कि वह इस पर विचार करे और कांग्रेस समर्थक विदेशियों को समझाने की पूरी कोशिश करे कि वह गलत दल का समर्थन कर रहा है।

III

पसंद और नापसंद के सवालों के साथ ही कांग्रेस के प्रति विदेशियों के विचित्र व्यवहारक के स्पष्टीकरण से यह मालूम पड़ता है कि स्वतंत्रता, स्वायत्त शासन और लोकतंत्र के बारे में कुछ नीतियां हो सकती है, जैसी कि पश्चिमी राजनीतिशास्त्रियों ने बताई हैं और एक औसत विदेशी के लिए वही ढर्रा बन गया है।

विदेशी देश की स्वतंत्रता और देश के लोगों की स्वतंत्रता में भेद नहीं करते। वे यही मान कर चलते हैं कि देश की स्वतंत्रता का अर्थ है देश के लोगों की स्वतंत्रता और यदि किसी देश को स्वतंत्रता मिल जाती है तो देश के लोगों को भी स्वतंत्रता मिल ही जाती है।

राजनैतिक क्षेत्र में पश्चिमी विचारकों द्वारा सिद्धांत प्रतिपादित किए गए हैं कि स्वायत्तशासी सरकार के लिए संवैधानिक नैतिकता आवश्यक है। ग्रोट* इसको प्रवृति मानते हैं : ''किसी संवैधानिक स्वरूप का सर्वोच्च सम्मान इसी बात में है कि उसके अधीन कार्यरत कार्यपालकों से आज्ञापालन कराया जाए, यद्यपि उनको एक निश्चित वैधानिक संयम के अंतर्गत स्पष्ट बोलने और कार्य करने की प्रवृत्ति की छूट दी जा सकती है तथापि उनके सार्वजनिक कृत्यों के लिए जन भावनाओं पर संपूर्ण विश्वास के साथ उन पर कड़ी फटकार लगाई जाए और पार्टी कार्यो की कड़वाहट को स्वीकार किया जाए। तब ही संवैधानिक स्वरूप निर्दोष कहा जा सकता है। वह विरोधियों की दृष्टि में और भी अधिक पवित्र होगा।'' यदि जनसाधारण में ऐसी आदते विद्यमान हैं, तब पाश्चात्य राजनैतिक विचारों के अनुसार स्वायत्त शासन एक वास्तविकता हो सकता है और उसके आगे और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। विचारकों का प्रजातंत्र के विषय में विश्वास है कि आदर्श प्रजातंत्र वयस्क मताधिकार की व्यवस्था है और दूसरे उपाय भी सुझाए गए हैं जैसे कि प्रतिनिधियों को वापस बुला लेने का अधिकार, जनमतसंगह, और संसद के अल्पकालिक अवधि में चुनाव, कुछ देशों में

* ग्रोट हिस्ट्री आफ ग्रीस खंड-3 पृष्ठ 347

यह प्रक्रिया जारी है, परंतु अधिकांश देशों में व्यस्क मताधिकार तथा बार-बार चुनाव से अधिक कुछ करना आवश्यक नहीं समझा गया, जिससे जनता द्वारा जनता की और जनता के लिए सरकार का सिद्धांत मान लिया गया है।

मुझे यह कहने में कोई हिचक नहीं कि ये दोनों धारणाएं मिथ्या और भ्रामक हैं। यदि कोई व्यक्ति किसी देश की स्वतंत्रता और उस देश के लोगों की भी स्वतंत्रता के बीच भेद नहीं कर पाता तो वह यदि धोखा नहीं खा जाता है तो भ्रमित अवश्य हो जाता है, क्योंकि समाज, राष्ट्र और देश ऐसी शब्दावलियां हैं, जो भिन्नार्थक नहीं है, तो अनिश्चित अर्थो वाली हैं। यह कहना आवश्यक है कि राष्ट्र एक शब्द है जिसका अर्थ है कई श्रेणियां। दर्शनशास्त्र के अनुसार राष्ट्र को ईकाई माना जा सकता है परंतु समाजशास्त्र की दृष्टि से इसका अर्थ यही है कि वह अनेक श्रेणियों का समूह नहीं हो सकता और किसी राष्ट्र की स्वतंत्रता का यथार्थ अर्थ यही हो सकता है कि वास्तविक स्वतंत्रता उसमें समाहित विभिन्न श्रेणियों की स्वतंत्रता और विशेष रूप से दास वर्ग की स्वतंत्रता से प्राप्त होती है।

किसी देश में संवैधानिक पद्धति की सरकार को बनाए रखने के लिए संवैधानिक नैतिकता आवश्यक होनी चाहिए। परंतु संवैधानिक सरकार का चलना लोगों द्वारा चुनी गई स्वाासी सरकार के समान ही नहीं होता। साथ ही यह भी माना जा सकता है कि व्यस्क मताधिकार से बनी सरकार कहने को तो राजतंत्र से भिन्न लोगों की सरकार हो सकती है, परन्तु इसी से यह लोकतांत्रिक सरकार नहीं हो पाती जिससे इसे लोगों द्वारा और लोगों के लिए सरकार कहा जा सके।

जिसे पश्चिमी यूरोप की संसदीय लोकतंत्र की त्रासदी का पता है उसे लोकतंत्र के दिवा स्वप्नों के और साक्ष्य देने की आवश्यकता नहीं होगी।* मैंने पहले भी एक स्थान पर जो कहा था उसके अनुसार पश्चिमी यूरोप में लोकतंत्र की विफलता का कारण निम्नांकित शब्दों में निरूपित किया जा सकता है:-

> ''मानव समाज में सरकारों में बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। एक समय था, जब सरकार स्वेच्छाचारी सम्राटों का निरंकुश स्वरूप हुआ करती थी। फिर लंबे समय तक हुए रक्तपात के बाद सरकार की नई पद्धति आई जो संसदीय लोकतंत्र कहलाया। तब यह समझा गया कि सरकार के स्वरूप की यह चरम परिणति है। तब यह समझा गया कि सरकार के स्वरूप की यह चरम परिणति है। तब यह विश्वास था कि इससे एक स्वर्ण युग आ जाएगा, जिसमें प्रत्येक मानव

* 17 सितंबर 1943 को नई दिल्ली में आल इंडिया ट्रैड यूनियन वर्कर्स स्टडी कैंप में पढ़ा गया प्रबंध लेख – लेबर एंड पार्लियामेंट्री डेमोक्रेसी।

को समानता, संपत्ति और खुशहाली की स्वतंत्रता मिलेगी। ऐसी उच्चाकांक्षाओं का अच्छा आधार था। संसदीय लोकतंत्र में जनता की अभिव्यक्ति के लिए विधायिका होती है। विधायिका के अधीन कार्यपालिका होती है। और दोनों पर नियंत्रण रखने तथा निर्धारित सीमाओं में रखने के लिए न्यायपालिका होती है। संसदीय लोकतंत्र में लोकप्रियता के सभी लक्षण होते हैं अर्थात लोगों की लोगों द्वारा लोगों के लिए सरकार। परंतु यह आश्चर्य की बात है कि संसदीय लोकतंत्र के विरूद्ध भी विद्रोह हुए हालांकि एक सौ साल भी नहीं हुए हैं जब इसका उदय हुआ और इसे पूरे विश्व में स्वीकार और अंगीकार कर लिया गया। अब इसके विरूद्ध इटली, जर्मनी, रूस और स्पेन में विद्रोह हुए। कुछ ही ऐसे देश हैं जहां संसदीय लोकतंत्र के विरूद्ध असंतोष नहीं है। संसदीय लोकतंत्र के विरूद्ध अंसतोष क्यों पनपा? यह एक विचारणीय प्रश्न है। ऐसा कोई अन्य देश नहीं है जहां इस प्रश्न पर भारत के समान तत्परता से विचार किया जाना चाहिए। भारत में संसदीय लोकतंत्र की बात चल रही है। यहां किसी ऐसे साहसी व्यक्ति की अत्यंत आवश्यकता है, जो भारतीयों को बता सके, ''संसदीय लोकतंत्र से सावधान रहो। यह इतनी श्रेष्ठ व्यवस्था नहीं है, जैसी दिखाई देती है।''

संसदीय लोकतंत्र क्यों विफल हुआ? तानाशाहों के देशों में यह इसलिए विफल हुआ कि इसकी गति बहुत धीमी है। इसमें सहज क्रिया का विलंब होता है। किसी संसदीय लोकतंत्र में विधायिका द्वारा कार्यपालिका के कार्यों में बाधा डाली जा सकती है, जो कार्यपालिका द्वारा प्रस्तावित कानूनों को पास करने से इंकार कर सकती है और यदि विधायिका द्वारा बाधा न डाली जाए, तो न्यायपालिका बाधा डाल सकती है, जो कानून को अवैध घोषित कर सकती है। संसदीय लोकतंत्र में तानाशाही की छूट नहीं होती। इसीलिए इटली, स्पेन और जर्मनी में इसकी साख जाती रही। इन देशों में तानाशाही का स्वागत किया। यदि अकेले तानाशाह ही संसदीय लोकतंत्र के विरूद्ध होते तो कोई बात नहीं थी। संसदीय लोकतंत्र के विरूद्ध घोषणा का स्वागत इस कारण किया जाएगा, क्योंकि यह तानाशाही पर लगाम का काम करेगी। परंतु दुर्भाग्य से उन देशों तक में संसदीय लोकतंत्र के विरूद्ध काफी अंसतोष है जहां के लोग तानाशाही के विरूद्ध हैं। संसदीय लोकतंत्र के विषय में यह अत्यधिक खेदजनक है। यह बहुत ही खेदजनक है क्योंकि संसदीय लोकतंत्र एक बिंदु पर टिका नहीं रहा। यह तीन दिशाओं में बढ़ा। समान मताधिकार के रूप में यह राजनीतिक अधिकारों में समानता लाया। बहुत कम ऐसे देश हैं, जहां संसदीय लोकतंत्र है और व्यस्क मताधिकार नहीं है। उसने सामाजिक समता और आर्थिक अवसरों को राजनीतिक

अधिकारों में समता की धारणा का विस्तार किया। यह माना जाता है कि जो संगठन समय के प्रतिकूल हैं वे सरकार को विवश नहीं कर सकते। इसलिए जो देश लोकतंत्र के पक्षधार हैं वहां भी संसदीय लोकतंत्र के विरूद्ध गहरा अंसतोष है। तानाशाही वाले देशों के मुकाबले वहां स्वाभाविक रूप से अंसतोष के कारण भिन्न है। इस समय विस्तार से नहीं लिखा जा सकता परंतु मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि संसदीय लोकतंत्र के विरूद्ध असंतोष का कारण यह असहसास हो जाना है कि यह जनसाधारण को स्वतंत्रता का अधिकार, संपत्ति और खुशहाली का अधिकार दिलाने में विफल रहा। इस विफलता का कारण या तो गलत विचारधारा हो सकता है या गलत संगठन अथवा दोनों ही।

दोषमुक्त विचारधाराएं जो संसदीय लोकतंत्र की विफलता के लिए जिम्मेदार हैं, उनके विषय में मुझे संदेह नहीं कि उनमें से एक है समझोते या संविदा की आजादी। यह विचारधारा एक रूढ़ि बन गई और इसे स्वतंत्रता के नाम पर जकड़कर रखा गया। संसदीय लोकतंत्र में आर्थिक विषमताओं पर ध्यान नहीं रखा गया। संसदीय लोकतंत्र में आर्थिक विषमताओं पर ध्यान नहीं दिया जाता और इसकी परवाह नहीं की जाती कि संविदा पक्षों के बीच संविदा स्वतंत्रता के परिणामों पर इसके बावजूद विचार नहीं किया जाता कि संविदा पक्ष मोलतौल करने की बराबर की स्थिति में नहीं होते। इस व्यवस्था में यह गलत नहीं माना जाता कि संविदा की स्वतंत्रता के नामर पर प्रबल पक्ष निर्बल को दबा बैठे। इसका परिणाम यह है कि संसदीय लोकतंत्र स्वतंत्रता की प्रचारक बन कर एक तरफ खड़ी हो जाती है और गरीबों दलितों और वंशानुगत दीन-हीन वर्ग पर आर्थिक ज्यादतियां होती हैं।

संसदीय लोकतंत्र दूषित करने वाली दूसरी गलत विचारधारा हैं, जिसमें आभास नहीं होता कि जब तक आर्थिक सामाजिक लोकतंत्र नहीं होता, तब तक राजनीतिक लोकतंत्र सफल नहीं हो सकता। कोई व्यक्ति इस सिद्धांत को चुनौती दे सकता है, जो इसे चुनौति देने पर आमादा हों मैं उनसे एक प्रति प्रश्न करूंगा। इटली, जर्मनी और रूप में संसदीय लोकतंत्र आसानी से क्यों विफल हो गया? इंगलैंड और अमरीका में वह यूं ही क्यों विफल न हो गया? मेरे हिसाब से इसका एक ही कारण है। वह यह है कि दोनों देशों में पूर्वोक्त देशों की अपेक्षा अधिक आर्थिक और सामाजिक लोकतंत्र है। सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र राजनीति लोकतंत्र का तानाबाना है। जितना ही मजबूत यह तानाबाना होगा उनकी दृढ़ता उसमें होगी। समानता लोकतंत्र का दूसरा नाम है। संसदीय लोकतंत्र में स्वतंत्रता की लालसा उत्पन्न होती है। इसका समानता से कोई रिश्ता ही नहीं होता। यह समानता का महत्व समझने में विफल रही और समानता और

स्वतंत्रता के बीच संतुलन स्थापित करने का इसमें प्रयत्न ही नहीं किया जाता। परिणाम यह निकलता है कि स्वतंत्रता समानता को निगल जाती है और लोकतंत्र एक मजाक बन कर रह जाता है।

मैंने कुछ गलत विचारधाराओं का जिक्र किया है, जो मेरे विचार से संसदीय लोकतंत्र की विफलता का कारण हैं। परंतु मुझे यह भी विश्वास है कि गलत विचारधारा की अपेक्षा गलत संगठन संसदीय लोकतंत्र की विफलता के लिए अधिक जिम्मेदार है। सारे राजनीतिक संगठन दो वर्गों में बंट जाते हैं – शासक और शासित। यह दुर्भाग्य है। यदि इतना ही दोष होता तो भी अधिक बुराई नहीं थी। परंतु विभाजन का दुखद पक्ष यह है कि विभाजन एक ढर्रा और नियति बन जाती हे कि शासक जातियां सदा शासक ही बनी रहती हैं और शासित जातियां कभी शासक नहीं बन सकतीं। यह इसलिए होता है कि लोग यह परवाह ही नहीं करते कि वे अपना शासन आप चलाएं। वे इसी बात से संतुष्ट हो जाते हैं कि एक सरकार बना दें और वह उन पर राज करती रहे। इससे स्पष्ट होता है कि संसदीय लोकतंत्र कभी लोगों की सरकार या लोगों द्वारा बनाई गई सरकार नहीं रही और वास्तव में यह वंशानुगत प्रजा और वंशानुगत शासकों की सरकार रही है। राजनीति का यह वह विषैला संगठन है, जिसने संसदीय लोकतंत्र को दयनीय रूप से विफल कर दिया है। यही कारण है कि संसदीय लोकतंत्र जनसामान्य की आकांक्षाएं पूरी नहीं कर सका और उन्हें स्वतंत्रता, संपत्ति और प्रसन्नता नहीं दे सका।''

यदि लोकतंत्र की विफलता के कारणों का यह विश्लेषण सही है तो लोकतंत्र के हिमायतियों के लिए यह एक चुनौती है। कुछ मूलभूत बातें हैं, जो लोकतंत्र की जड़ें हैं, जिसकी वे अनदेखी नहीं कर सकते। बात को और स्पष्ट करने के लिए यह बातें क्रमवार रखनी होंगी।

पहले तो हमें यह ऐतिहासिक सत्य स्वीकार करना पड़ेगा कि प्रत्येक देश में दो वर्ग होते हैं – शासक और दास वर्ग, जिनके बीच बराबर सत्ता संघर्ष रहता है। दूसरी बात यह है कि सत्ता और प्रतिष्ठा के बल पर शासित वर्ग पर अपना प्रभुत्व जमाना उनके लिए आसान काम है। तीसरी बात यह है कि वयस्क मताधिकार और चुनावों की प्रवृति के बावजूद शासक वर्ग के सामने सत्ता प्राप्त करने में कोई अवरोध नहीं आता। चौथी बात यह है कि शासित वर्ग के लोग अपनी हीन भावना के कारण शासक वर्ग को अपना स्वाभाविक नेता मानते हैं और दास वर्ग उन्हें स्वेच्छा से शासक चुन लेता है। पांच बात यह है कि लोकतंत्र में स्वायत्त शासन में आस्था न रखने वाले शासक वर्ग की मौजदूगी के कारण और इस तथ्य के संदर्भ में कि जहां

तक शासक वर्ग सत्ता की डोर को थामे रहता है, वहां यह सोचना ही गलत है कि लोकतंत्र और स्वशासन समाज का वास्तव में अंग बन गए हैं। छठी बात यह है कि लोकतंत्र और स्वशासन तभी यथार्थ रूप ग्रहण नहीं कर सकते हैं जब वयस्क मताधिकार लागू हो जाए बल्कि ये तभी साकार बन सकते हैं जब शासक वर्ग की वह क्षमताएं ही समाप्त हो जाएं जिनके बल पर वह सत्ता प्राप्त करता है। सातवां तथ्य है कुछ देशों में शासित वर्ग शासक वर्ग को वयस्क मताधिकार से सत्ताच्युत करने में सफल हो जाता है। कुछ दूसरे देशों में शासक वर्ग की जड़े इतनी गहरी होती हैं कि शासित वर्ग को इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वयस्क मताधिकार के साथ कुछ अन्य संरक्षणों की भी आवश्यकता होती है।

चूंकि इन विचारों का प्रतिपादन करना अत्यंत महत्वपूर्ण है, इसलिए हर स्वतंत्राप्रेमी के सामने उन्हें प्रमुखता से रखना आवश्यक है, ताकि वह इनको देख सके और समझ सके। इनसे उसे इतनी सहायता मिलेगी जितनी किसी अन्य बात से नहीं मिल सकती। इसी से उसे अहसास होगा कि लोकतंत्र के लिए संविधान की रचना के समय वह याद रखे कि ऐसे संविधान का मुख्य उद्देश्य शासक जातियों को सत्ता का स्थाई भोगी न बनने देना है जिससे कि लोकतांत्रिक सरकार की स्थापना की प्रक्रिया हठधर्मिता बन कर रह जाए। शासक जातियों को सत्ता से बाहर रखना मुख्य उद्देश्य है। लोकतांत्रिक सरकार की प्रक्रिया स्थापना की समरूप न रहे कि लोकतंत्र की प्रक्रिया को न केवल सहन किया जाए बल्कि उसे स्वीकार किया जाए क्योंकि वह प्रक्रिया ही है, जिसके बल पर शासक वर्ग शासित वर्ग पर सर्वत्र अपना वर्चस्व बनाए रखता है।

यही लोकतंत्र है, परंतु राजनीति पर जिन पश्चिमी लेखकों से विदेशी प्रभावित होते हैं, वे राजनीति के इस यथार्थ रूप को समझने में असफल रहे हैं। इसके बजाए वे इसके सैद्धांतिक या किताबी तथा ऊपरी बातों से ही प्रभावित हैं, जो संवैधानिक नैतिकता, वयस्क मताधिकार तथा चुनावों की आवृति को ही सब कुछ समझते हैं।

जो इस विचार को मानते हैं कि लोकतंत्र इन तीनों बातों को छोड़ कर और कुछ नहीं है या वह इनसे भिन्न नहीं है वे शासक वर्ग के ही विचारों को प्रकट करते हैं। शासक वर्ग अनुभवों से जानता हैं कि इस प्रकार की व्यवस्था इनकी सत्ता और स्थिति के लिए घातक साबित नहीं हुई है। दरसल उन्होंने अपने अधिकारों और प्रतिष्ठा को कानूनी गुणों का लबादा ओढ़ा लिया है और शासित वर्ग के प्रहार के सामने अपनी निर्बलता का असर कम कर दिया है।

जो यह चाहते हैं कि लोकतंत्र और स्वशासन स्वतः स्वाभाविक रूप से प्राप्त हों और वे केवल सैद्धांतिक न हों तो उनके लिए बेहतर यह है कि वे इस बात को

भली भांति समझ लें कि स्थायी शासक वर्ग की मौजूदगी लोकतंत्र के लिए सबसे बड़ा खतरा है। लोकतंत्र को अपनाने के लिए ऐसी ही नीति अपनानी होगी। कोई निष्कर्ष निकालने से पूर्व उन वर्गो की मौजूदगी को भुला देना एक घातक भूल होगी और देखना होगा कि क्या किसी स्वतंत्र देश में स्वतंत्रता किसी विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग के ही हिस्से में आएगी अथवा वह सभी को नसीब होगी। मेरे विचार से जो विदेशी कांग्रेस का पक्ष लेना पसंद करते हैं, उन्हें यह नहीं पूछना चाहिए कि क्या कांग्रेस स्वतंत्रता के लिए लड़ रही है? उसे पूछना चाहिए कि कांग्रेस किस स्वतंत्रता के लिए लड़ रही है? क्या वह भारत की शासक जातियों के लिए लड़ रही है या भारत की जनता के लिए लड़ रही है ? यदि उसे पता चलता है कि कांग्रेस शासक जातियों के लिए लड़ रही है तो उसे कांग्रेस से पूछना चाहिए कि क्या भारत की शासक जातियां राज करने के लिए उपयुक्त पात्र हैं? कांग्रेस का पक्ष लेने से पूर्व उसे कम से कम इतना तो करना ही चाहिए।

इन प्रश्नों का कांग्रेस क्या उत्तर देगी? मुझे पता नहीं है। परंतु मैं इन सवालों का सही उत्तर दे सकता हूँ।

IV

मैं नहीं कह सकता कि इस अधयाय के तीसरे भाग में जो लिखा गया है उससे विदेशी प्रभावित होंगे अथवा नहीं। यदि वह उससे प्रभावित होते हैं तो वे निस्संदेह इस बात के सबूत मांगेगे कि कांग्रेस देश की आजादी की लड़ाई लड़ कर देश में लोकतंत्र की स्थापना के लिए संघर्ष नहीं कर रही हैं, बल्कि प्राचीन हिंदू राजनीति की पुनर्स्थापना की तैयारी कर रही है, जिससे वंशानुगत शासक जातियां शासित वर्ग पर राज कर सकें। मुझे यह पता नहीं कि विदेशी साक्ष्य से संतुष्ट होंगे या नहीं । परन्तु मैं इसे उनके समक्ष रखने के लिए तैयार हूं ।

भारत में शासक जातियां कौन हैं? भारतीयों के लिए यह प्रश्न आवश्यक नहीं है, परंतु विदेशियों के लिए प्राथमिक और अनिवार्य है। इसलिए इस पर विचार किया जाना चाहिए। भारत में शासक जातियां मुख्यतया ब्राह्मण हैं। आश्चर्य की बात है कि आज के ब्राह्मण इस कथन का खंडन करते है कि वे शासक जातियों से संबंधित हैं यद्यपि वे किसी समय अपने को भूदेव कहते थे। उन्होंने यह पलटी क्यों खाई? प्रत्येक समुदाय में बौद्धिक वर्ग को उसकी आचार संहिता द्वारा एक पावन कर्तव्य सौंपा जाता है, अर्थात् समुदाय का हित रक्षण। यह नहीं कि अपने हितों के लिए वे उसी कर्तव्य की बलि चढ़ा दें। संसार में किसी आध्यात्मिक वर्ग ने इतना विश्वासघात नहीं किया जितना भारत में ब्राह्मणों ने किया है। यह सोचना होगा कि उन्होंने अपराधबोध से तो

यह पलटी नहीं खाई है क्योंकि उन्होंने यह सोचा होगा कि हमने जो विश्वासघात किया उससे वे दुनिया में किसी को मुंह दिखाने लायक नहीं रहे। या यह उनका विनम्र भाव है। अब यह देखा जाए कि इनमें से सच क्या है? ब्राह्मण ही शासक जातियां हैं, इस पर प्रश्न चिन्ह नहीं लगाया जा सकता । जरूरी हो तो दो प्रकार से इसकी परीक्षा की जा सकती है। प्रथम परीक्षा लोगों की इनके प्रति भावना की और दूसरी प्रशासन में इनकी भागीदारी की। जहां तक पहले परीक्षा की बात है अर्थात् लोगों की ब्राह्मण वर्ग के प्रति भावना का सवाल है उसमें कोई संदेह नहीं किया जा सकता। सर्वसाधारण की भावना के अनुसार चाहे वह ऊंचा हो या नीचा सबके लिए ब्राह्मण पवित्र है। वह अत्यधिक धर्मात्मा है, जिसके आगे सब नतमस्तक होते हैं। पूर्व ब्रिटिश काल में उसे दंड से मुक्ति मिली हुई थी, जो निम्न वर्ग को प्राप्त नहीं थी। प्राचीन काल में ब्राह्मण चाहे हत्या जितना जघन्य अपराध करे, उसे मृत्यु दंड नहीं दिया जा सकता था। उसे पवित्र मनुष्य मान कर ही सभी प्रकार की सुविधााएं प्राप्त थी।

एक समय ऐसा था जब शासित वर्ग का कोई मनुष्य उस पानी को पिए बिना भोजन नहीं कर सकता था, जिस पानी से ब्राह्मण के पैर का अंगूठा न धोया गया हो। सर पी.सी.रे ने अपने बचपन की बात लिखी है कि कलकत्ता की सड़कों पर प्रातः काल शासित जातियों के बच्चे पात्रो में पानी के लिए ब्राह्मण के पैर धोने के लिए घंटो प्रतीक्षा किया करते थे। वे पैर धोकर यह पानी अपने माता पिता को देते थे, जो भोजन के लिए उनकी प्रतिक्षा करते रहते थे। ब्राह्मण प्रथम फल प्राप्त करने का सही अधिकारी था। मालाबार में जहां संबंधम् विवाह प्रथा प्रचलित थी वहा शासित जातियां जैसे नायर अपनी कन्याओं को ब्राह्मण द्वारा रखैल बनाए जाने को अपनी इज्जत समझते थे। यहां तक कि राजा भी अपनी रानियों का शील भंग करने के लिए ब्राह्मण को निमंत्रण देते थे।*

ब्रिटिश शासन के कारण और कानून के समक्ष समानता के कारण ब्राह्मणो के विशेषाधिकार और दंडित न किए जा सकने की सुविधाएं छिन गई। फिर भी निम्न वर्ग उसे पवित्र मानते हैं। आज भी वे उसे स्वामी कह कर पुकारते हैं, जिसका अर्थ है भगवान।

---

* यात्री श्री लुडोविको डि वरथेमा जो 16वीं शताब्दी के मध्य में भारत आया था मालाबार के विषय में लिखता है "यह जानकर अच्छा लगा कि ये ब्राह्मण कैसे हैं ? यह आपको ज्ञात होना चाहिए कि हमारे पुजारियों की तरह ब्राह्मण भी धर्म के मुखिया हैं और जब कोई राजा अपनी पत्नी व्याह कर लाता है तो वह पहले ब्राह्मणों में से एक सुयोग्य और प्रतिष्ठित ब्राह्मण को अपनी नव-विवाहिता पत्नी के साथ पहली रात में सोने के लिए चुनता है, इसलिए कि ब्राह्मण उस विवाहिता रानी का शील हरण करे। यह न समझे कि ब्राह्मण ऐसा करने के लिए इच्छापूर्वक जाते हैं। इसके लिए राजा उस ब्राह्मण को 400-500 स्वर्ण मुद्राएं देता है। कालीकट में राजाओं के अतिरिक्त और किसी में भी ऐसी प्रथा नहीं है। वायज आफ वरेथेमा (क्युियात सोसायटी खंड 1, पृष्ठ 141)

दूसरे परीक्षण से भी ऐसा ही निष्कर्ष निकलता है। उदाहरण के लिए मद्रास प्रेसीडेंसी को लीजिए। अगले पृष्ठ पर तालिका संख्या 1 का अवलोकन कर विचार करें। उससे स्पष्ट है कि वर्ष 1943 में राजपत्रित पद ब्राह्मणों तथा अन्य समुदायों में किस प्रकार बांटे गए थे। इसी प्रकार के आंकड़े इस कथन की पुष्टी में अन्य प्रांतों से भी प्रमाण के तौर पर दिए जा सकते हैं। परंतु उसके लिए परिश्रम करने की कोई आवश्यकता नहीं। ब्राह्मण अपने आपको शासक जाति का सदस्य होने का दावा करते हैं या नहीं, वास्तविकता यह है कि प्रशासन पर उन्हीं का नियंत्रण है और शासित जातियां उनके ब्राह्मणत्व को स्वीकारती है। यह प्रमाण काफी है ।

दरसल यह संभव नहीं कि ब्राह्मण किसी अन्य वर्ग को अपने साथ जोड़े बिना अपनी शासकीय श्रेष्टता का पद बनाता क्योंकि उनकी जनसंख्या बहुत कम है।

इतिहास से स्पष्ट है कि ब्राह्मण सदैव उन्हीं दूसरे वर्गो को अपने से सम्बद्ध करते रहे हैं जिन्हें वे शासक जातियों के समान स्तर देने को तैयार होते थे।

---

* दूसरे यात्री ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि यह प्रथा काफी व्यापक थी। ईस्ट इंडीज पर अपने विवरण में हेमिल्टन लिखता है:- जब राजा नव-विवाहिता पत्नी लाता है तो अपनी पत्नी के साथ तब तक सहवास नहीं कर सकता जब तक कि नम्बूदरी अथवा धर्म प्रमुख ब्राह्मण उसके साथ सहवास न कर ले और यदि वह ब्राह्मण चाहे, तो उसके साथ तीन रातें और सहवास कर सकता है, क्योकि उस विवाहिता पत्नी के वैवाहिक संस्कार का पहला प्रसाद इस पवित्र देवता(ब्रह्मण) को भेंट किया जाना चाहिए जिसकी वह पूजा करती है और उसे कुछ सामंत भी ऐसे होते हैं जो नम्बूदरी को यह प्रसाद चखाते हैं परंतु जनसाधारण को यह विशेष अधिकार नहीं हैं बल्कि पुरोहित के बजाए खुद यह प्रसाद चखते है।"

(खंड 1, पृष्ठ 308)

बुचनान ने अपने यात्रा वृत्त में लिखा है कि तामरी परिवार की पत्नियों को सामान्यता नम्बूदरी ब्राह्मणों द्वारा गर्भधारण कराया जाता था। यदि वे चाहें तो नायर लोगों से भी करा सकती हैं परंतु नम्बूदरी ब्राह्मण से गर्भित होना पवित्र कार्य समझती हैं।

- पिकरटने वायज खंड 8 पृष्ठ 734

मि.सी.ए.अन्नेस.आई.सी.एस. जी मालाबार और अंग्रेजों के गजेटियर के संपादक थे उन्होंने मद्रास सरकार के अधिकारी की हैसियत से लिखा है:-

"मरूक्काटायम प्रथा को पालने की प्रथा अधिकारी वर्गो में प्रचलित है जो मालयाली विवाह पद्धति में प्रचलित अजीबोगरीब प्रथा है। उस प्रथा का सार यह है कि लड़की को उसके गले में रजस्वला होने की आयु से पहले सोने अथवा अन्य धातु की बनी हुई ताली (लाकेट) बांध दी जाती थी। ताली उसकी अथवा उससे ऊंची जाति का व्यक्ति बांधता था। वह उस से संबंध स्थापित कर सकती थी। सामान्यतया यही होता था कि ताली बांधने वाला व्यक्ति उसका दूल्हा बनता था और वही उससे सहवास करने का अधिकारी था और यह कृत्य भूदेव करते थे। इससे निचले स्तर के लोगों का ऐसा विवाह संपादन क्षत्रिय अथवा शासक जातियों के लोग करते थे तथा अपने से निम्न जाति की स्त्री का प्रथम फल प्राप्त करते थे।"

- खंड, 1 पृष्ठ 101

तालिका संख्या 1 (मद्रास प्रेसीडेंसी)

जातियां	अनुमानित जनसंख्या लाखों में	जनसंख्या का प्रतिशत	संपूर्ण राजपत्रित पदों (2000) में से प्राप्त संख्या	की गई नियुक्तियों का अनुपात	अराजपत्रित पद			
					सौ रु. से अधिक वाले कुल पद 7500		35 रु. से अधिक वाले पद 20782	
					नियुक्त पदों की संख्या	नियुक्त किये गये पदों का प्रतिशत	नियुक्त पदों की संख्या	नियुक्त किये गये पदों का प्रतिशत
1	**2**	**3**	**4**	**5**	**6**	**7**	**8**	**9**
ब्रह्मण	15	3	820	37	3280	43.73	8812	42.4
ईसाई	20	4	190	9	750	10	1655	8.0
मुसलमान	37	7	150	7	497	6.63	1624	7.8
गैर ब्राह्मण: दलित वर्ग	70	14	25	1.5	39	0.52	144	0.69
गैर ब्राह्मण: आगे बढ़े गैर ब्राह्मण	113	22	620	27	2543	33.9	8440	40.6
गैर ब्राह्मण: पिछड़ा वर्ग	245	50	50	2				
एशिया के बाहर के एग्लोइंडियन	–	–	–	–	372	5.0	83	0.4
अन्य जातियाँ	–	–	–	–	19	0.5	24	0.11

वह इस शर्त पर कि वे शासक जातियां उनके अधीन होकर उन्हें सहयोग देने को तैयार हों। प्राचीन काल तथा मध्य काल में ब्राह्मणों ने क्षत्रियों अथवा सैनिक वर्ग से ऐसा संबंध जोड़ा और दोनों ने शासन किया। वास्तव में उन्होंने जनता को कुचल डाला–ब्राह्मणें ने अपनी कलम से और क्षत्रियों ने अपनी तलवार से। इस समय ब्राह्मण ने वणिक वर्ग को अपने साथ जोड़ लिया है, जिसे बनिया कहते हैं। क्षत्रियों से नाता तोड़ कर बनियों से संबंधा जोड़ना स्वाभाविक है। आज के व्योपार के युग में शस्त्र की अपेक्षा धन महत्वपूर्ण है। इस प्रकार नया नाता जोड़ने का यही मुख्य कारण है। दूसरा कारण राजनैतिक मशीनरी को गतिमान रखने के लिए धन की आवश्यकता है। धन केवल बनियों से मिल सकता है। यह केवल बनियां वर्ग ही है जो श्री गांधी के बनिया होने के कारण कांग्रेस को धन देता है। उस बनिया वर्ग को यह भी मालूम है कि राजनैतिक क्षेत्र में पैसा लगाने से उन्हें काफी लाभ मिलेगा। जिन लोगों को इसमें काफी संदेह हो वे पढ़े कि 6 जून 1942 को श्री लुई फिशर से श्री गाँधी की वर्ता हुई वार्ता क्या थी।* वे श्री फिशर की 'गांधी के साथ एक सप्ताह' नामक पुस्तक के निम्न पैरा को पढ़ कर अपने संदेह को दूर कर सकते हैं:-

मैंने कहा कि कांग्रेस पार्टी के विषय में मुझे श्री गांधी से कई प्रश्न पूछने थे। मुझे उच्च पदाधिकारी अंग्रेजों ने बतलाया था कि कांग्रेस धनी वर्ग के हाथों में खेल रही है, और बम्बई के उन करोड़पतियों का समर्थन श्री गांधी को प्राप्त है, जो मनचाहा धन उन्हें देते हैं। मैंने उनसे पूछा यह कहा तक सत्य है? उन्होंने साधारण ढंग से कहा–"दुर्भाग्यवश वे ही कहते हैं। कांग्रेस के पास अपना कार्य सुचारू रूप से चलाने के लिए पर्याप्त धन नहीं है। हमने आरंभ में सोचा था कि प्रत्येक कांग्रेसी सदस्य से चार आना वार्षिक चंदा एकत्र करेंगे और उससे अपना काम चलायेंगे। परंतु उससे काम नहीं चला। मैंने उनसे पूछा कि कांग्रेस बजट का कितना अनुपात अमीर भारतीयों द्वारा दिया जाता है? उन्होने उत्तर दिया–संपूर्ण बजट उदाहरणार्थ इस आश्रम में जितना हम खर्च करते हैं, उनसे कम धनराशी में हम गरीबी के साथ गुजर कर सकते थे। परंतु हम ऐसा नहीं करते और खर्च के लिए सारा धन हमारे धनवान मित्रों से मिलता है।"

यही कारण है कि शासक जातियों की स्थिति से बनिया वर्ग को निकालना ब्राह्मण के लिए असंभव बात है। वास्तव में ब्राह्मणों ने बनिया वर्ग से केवल काम चलाऊ नहीं बल्की गहरा संबंध जोड़ रखा है। परिणाम यह है कि आजकल भारत में शासक जातियां ब्राह्मण–क्षत्रिय के बजाए ब्राह्मण–बनिया हैं।

* ए वीक विद गांधाी (1943) पृष्ठ 41)

भारत में शासक जातियों कौन है इस विषय में काफी कुछ कहा जा चुका है। अगला प्रश्न यह है कि 1937 के प्रांतीय विधान सभाओं के चुनाव में शासक जातियों की क्या उपलब्धियां रहीं ।

1937 के चुनावों का आधार ऐसा मताधिकार था, जो न तो सार्वभौमिक था और न ही वयस्क मताधिकार। फिर भी उससे उन वर्गों को भी मताधिकार मिला, जो शासक जातियों में नहीं आते। यह निश्चित रूप से उनसे तो अधिक व्यापक था, जैसा 1937 तक प्रचलित मतदान अधिकार था। ऐसे मताधिकार पर आधारित चुनाव यह जानने के लिए अच्छा मापदण्ड है कि शासक जातियों की कितनी-कितनी उपलब्धियां थीं।

दुर्भाग्य से भारत के किसी प्रकाशक ने डोडस पार्लियामेंटरी मैनुअल जैसा संस्कारण नहीं छापा है। परिणामस्वरूप कांग्रेस से टिकट पर चुने गए विधायकों की जाती, व्यवसाय, शिक्षा और सामाजिक स्तर के बारे में विवरण उपलब्ध नहीं है। यह विषय इतना महत्वपूर्ण है कि 1937 में चुने गए प्रांतीय विधानमंडलो के सदस्यों पर मैंने इन बिंदओं पर आवश्यक सूचना एकत्र करने पर विचार किया । मैं प्रत्येक सदस्यों के विषय में संक्षिप्त सूचना प्राप्त करने में सफल हो गया हूं। बहुत से ऐसे है, जिन्हें मैंने अनावश्यक जान कर छोड़ दिया है। परंतु मुझे विश्वास है कि जो सूचनाएं मैंनें एकत्र की है, उनसे कुछ निश्चित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

V

इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए कि 1937 के चुनावों में शासक जातियों को कितनी सफलताएं मिलीं, तालिका संख्या 2* देखनी होगी जिसमें ब्राह्मण का बनियों (जमींदार और महाजन) और गैर-शासक जातियों का अनुसूचित जातियों से अनुपात दर्शाया गया है, जो कांग्रेस के टिकट पर प्रांतीय विधानमंडलों के लिए चुने गए थे।

जिन्हें इस बात का ज्ञान नहीं है कि हिंदुओं की कुल जनसंख्या में ब्राह्मणों का अनुपात कितना कम है, उन्हें इस बात का अहसास नहीं होगा कि चुनावों में ब्राह्मणों को कितना अधिक प्रतिनिधित्व मिला । परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि ब्राह्मणों को उनकी संख्या की अपेक्षा अत्यधिक प्रतिनिधित्व मिला।

जो यह जानना चाहते हैं कि संपन्न वर्ग जैसे बनिया, व्यापारी और जमींदार को कितना प्रतिनिधित्व मिला वे तालिका संख्या 3* देखें। इससे पता चलेगा कि बनियों, व्यापारियों और जमींदारों का अनुपात उनकी संख्या से कितना भिन्न है।

---

* इन तालिकाओं में दर्शाए गए तथ्य भारत सरकार द्वारा जारी किये गये एक शासकीय प्रकाशन "इन्फारमंशन" के 15 जुलाई 1939 के अंक से लिए गए हैं।

1937 में हुए चुनावों के बाद बने विधानमंडलों में शासक जातियों की यह स्थिति है। यह कहा जा सकता है कि कुल मिलाकर शासक जातियां विधानमंडलों में अल्पसंख्या में हैं। इसके संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि शासक जातियों का वर्चस्व विधानमंडलों में संख्या के परिप्रेक्ष्य में न देखा जाए, बल्कि यह देखा जाए कि कार्यपालिका में वे कितनी प्रशासनिक शक्ति पा जाते हैं। मंत्रियों के वर्ग समूह के विषय में बहुत स्पष्ट सूचना है, जो तालिका संख्या 5 और 6 में मौजूद है। तालिकाओं पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि मंत्रिमंडल में प्रमुख शासक जाति ब्राह्मण बहुसंख्या में थे, यहां तक कि संसदीय सचिव भी ब्राह्मण थे।

अब तक जो कुछ कहा गया है, उनसे दो बातें उभर कर सामने आती हैं। पहली तो यह कि भारत में एक सुपरिभाषित शासक वर्ग है, जो निम्न शासित जातियों से विशिष्ट और भिन्न है। दूसरी बात यह है कि शासक जातियां इतनी शक्तिशाली है कि 1937 के चुनावों में कम सख्यां में चुने जाने पर भी उन्होंने आसानी से सत्ता हथिया ली और शासित जातियों पर प्रभुत्व स्थापित कर लिया। अब मेरे लिए केवल अपना पक्ष रखने के लिए जो बिंदू बताने के लिए बच रहा है, वह है यह बताना कि 1937 के चुनावों में कांग्रेस शासक जातियों के प्रतिनिधियों की विजय के लिए कहां तक जिम्मेदार थी। मुझे यकीन है और मैं निस्संदेह यह प्रमाणित कर दूंगा कि कांग्रेस निम्न वर्ग पर शासक जातियों का प्रभुत्व बनाने के लिए जिम्मेदार है। यह कहा जा सकता है कि कांग्रेस का इससे कुछ लेना देना नहीं है। यदि कांग्रेस इसके लिए उत्तरदायी भी है तो यह मात्र संयोग था और कांग्रेस का इरादा शासक जातियों की जीत और प्रभुत्व जमाने में मदद करना ही था।

तालिका - 2

प्रान्तीय विधान सभाओं में जातियों के आधार पर कांग्रेस सदस्यों का वर्गीकरण

प्रांत	*ब्राह्मण*	*गैर ब्राह्मण*	*अनुसूचित जातियाँ*	*अवर्णित*	*योग*
आसाम	6	21	1	5	33
बंगाल	15	27	6	6	54
बिहार	31	39	16	12	98
सी.पी (मध्य प्रांत)	28	35	7	-	70
मद्रास	38	90	26	5	159
उड़ीसा	11	20	5	-	36
संयुक्त प्रांत	39	54	16	24	133

तालिका - 3

प्रान्तीय विधान सभाओं के अनुसार कांग्रेस सदस्यों का व्यवसायानुसार वर्गीकरण

प्रांत	वकील	डाक्टर	भूस्वामी	व्योपारी	निजी कर्मचारी	ऋणदाता महाजन	शून्य	अवर्णित	योग
आसाम	16	2	2	1	–	–	3	9	33
बंगाल	9	2	16	5	2	–	16	4	54
बिहार	14	4	56	6	3	–	1	14	98
सी.पी (मध्य प्रांत)	20	2	25	10	–	–	8	5	70
मद्रास	52	2	45	18	2	1	3	36	159
उड़ीसा	8	1	17	4	4	1	1	–	36

तालिका - 4

कांग्रेस प्रांतो में मंत्रिमण्डल का गठन

प्रांत	मंत्रिमंडल में मंत्रियों की संख्या	गैर-हिन्दू मंत्रियों की संख्या	मंत्रियों में हिन्दू मंत्रियों की संख्या				
			कुल योग	ब्राह्मण	गैर ब्राह्मण	अनुसूचित जातियाँ	मुख्यमंत्री
आसाम	8	3	5	1	–	शून्य	ब्राह्मण
बिहार	4	1	3	–	–	1	ब्राह्मण
बम्बई	7	2	5	3	2	शून्य	ब्राह्मण
सी.पी (मध्य प्रांत)	5	1	4	3	1	शून्य	ब्राह्मण
मद्रास	9	2	7	3	3	1	ब्राह्मण
उड़ीसा	3	शून्य	3	–	–	1	–
संयुक्त प्रांत	6	2	4	4	शून्य	शून्य	ब्राह्मण

तालिका - 5

कांग्रेस प्रांतो में संसदीय सचिवों का वर्गीकरण

गैर हिन्दू पार्लियामेंटरी सचिवों की संख्या	हिन्दू पार्लियामेंटरी			
	कुल योग	ब्राह्मण	गैर ब्राह्मण	अनुसूचित जातियाँ
शून्य	शून्य	शून्य	शून्य	शून्य
शून्य	8	2	5	1
शून्य	6	1	5	शून्य
शून्य	शून्य	शून्य	शून्य	शून्य
1	7	3	4	1
शून्य	3	–	–	शून्य
1	11	2	8	1

तालिका - 6

शिक्षा के आधार पर कांग्रेस में ब्राह्मणों की संख्या का वर्गीकरण

प्रान्तीय विधान सभा	जातियां	योग	ग्रेजुएट	बिना ग्रेजुएट	हाई स्कूल कर्मचारी	अशिक्षित महाजन	अवर्णित
आसाम	ब्राह्मण	6	5	1	–	–	–
	गैर–ब्राह्मण	21	15	2	–	1	9
बंगाल	ब्राह्मण	15	14	1	–	–	–
	गैर–ब्राह्मण	27	21	4	–	1	7
	अनुसूचित जाति	6	3	–	1	2	–
बिहार	ब्राह्मण	31	11	5	8	4	3
	गैर–ब्राह्मण	39	23	4	3	8	13
	अनुसूचित जाति	–	1	1	4	10	–
सी.पी.	ब्राह्मण	39	15	–	2	9	2
(मध्य प्रांत)	गैर–ब्राह्मण	24	15	–	2	17	1
	अनुसूचित जाति	-	1	-	-	6	-
मद्रास	ब्राह्मण	38	16	2	3	4	13
	गैर–ब्राह्मण	90	31	3	1	7	61
	अनुसूचित जाति	–	1	–	–	–	–
उड़ीसा	ब्राह्मण	11	6	1	–	3	1
	गैर–ब्राह्मण	20	7	3	2	7	1
	अनुसूचित जाति	5	–	–	–	5	–

V

इस बचाव तर्क का आसानी से उत्तर दिया जा सकता है। इस तर्क का कारण शायद यह है कि जो इसका सहारा लेते हैं, वे उस प्रांत के राजनीतिक वातावरण से परिचित नहीं है, जिनके बारे में तालिका 2 से 6 में आंकडे दिए गए हैं। यदि उन्हें पता होता,तो शायद वे यह रास्ता न अपनाते, क्योंकि उनका संबंध कांग्रेस प्रांतो से है। इन प्रांतो में कांग्रेस का बहुमत था और उसी के मंत्रिमंडल थे। स्पष्ट है की यदि शासक जातियों के प्रभावित प्रांत शासित जातियों पर अपनी सत्ता स्थापित करने में सफल हो सकें, तो यह कहना कठिन है कि कांग्रेस उसके परिणाम से कैसे पल्ला झाड़ सकती है। कांग्रेस एक सुगठित पार्टी है। चुनाव लड़ने के लिए उसकी एक योजना होती है। प्रत्येक प्रांत में एक संसदीय बोर्ड था जिसके कार्य थे – (1) चुनाव में प्रत्याशियों का चयन करना (2) मंत्रिमंडल गठन पर निर्णय करना, और (3) मंत्रियों पर कार्रवाइयों पर नियंत्रण रखना। प्रांतीय संसदीय बोर्ड के ऊपर संसदीय बोर्ड है जो प्रांतीय संसदीय बोर्डो का अधीक्षण और नियंत्रण करता है। इस चुनाव का नियोजन और नियंत्रण कांग्रेस ने किया, इसलिए यह कहना व्यर्थ है कि यदि 1937 के चुानवो में शासक जातियों ने सत्ता हथिया ली, तो उसके लिए कांग्रेस जिम्मदार नहीं है।

बचाव का दूसरा तर्क भी पहले की तरह लचर है। जो लोग यह दलील देते हैं कि कांग्रेस प्रांतों में शासक जातियों का वर्चस्व मात्र एक संयोग है, उसके पीछे कोई संकल्प नहीं है, उन्हें पता होना चाहिए कि जो तर्क वे दे रहे हैं, वह थोथा है। जो लोग इसे मात्र संयोग मानते हैं, मैं उनका ध्यान निम्नलिखित परिस्थितियों की ओर आकर्षित करता हूँ।

सबसे पहले वे कांग्रेस हाई कमान के प्रमुख सदस्यों की मनोवृत्ति को देखें, जो अतीत में कांग्रेस के भाग्यनिर्माता रहे हैं और फिलहाल भी कांग्रेस की डोर जिनके हाथ में है। बेहतर होगा कि तिलक से आरंभ करें। अब वे दिवगंत है, परंतु जीवन काल में वे कांग्रेस के प्रमुख नेता थे और पार्टी पर उनका सबसे अधिक दबदबा था। श्री तिलक ब्राह्मण थे और शासक जातियों से सम्बद्ध थे। वैसे वे स्वराज आंदोलन के जनक कहे जाते हैं। परंतु शासित जातियों के प्रति उनकी उपेक्षा सुविदित है। स्थानाभव के कारण मैं यहां शासित वर्ग के प्रति उनकी मनोवृत्ति का मात्र एक उदहारण प्रस्तुत करूंगा। 1918 में जब गैर–ब्राह्मण लोगों तथा पिछडे वर्ग के लोगों ने विधान सभाओं मे अपने पृथक प्रतिनिधित्व के लिए आंदोलन आरंभ किया, तो श्री तिलक ने शोलापुर में हुई जन सभा में कहां : "मैं नहीं समझता कि तेल निकालने वाले तेली, तमोली,

धोबी इत्यादि गैर-ब्राह्मण और पिछड़े वर्ग के लोग विधान सभाओं में क्यों जाना चाहते है?" श्री तिलक के विचार से उस वर्ग का कार्य है, आदेशों और कानूनों का मानना। तिलक के पश्चात मैं वल्लभभाई पटेल को लेता हूं । उनकी मनोवृत्ति पर भी मैं एक ही उदहारण दूंगा। वर्ष 1942 में लार्ड लिनथिगों ने विभिन्न वर्गो के 52 गणमान्य भारतीय प्रतिनिधियों को इस बात पर विचार करने के लिए आमंत्रित किया कि उस समय युद्ध के अवसर पर भारत सरकार को सहानुभूतिपूर्वक सहयोग देने के लिए उठए जाने के संबंध में उनकी क्या राय है। उन आमंत्रित व्यक्तियों में अनुसूचित जातियों के भी सदस्य थे। श्री वल्लभभाई पटेल को वायसराय का यह विचार पसंद नहीं आया की ओछी जातियों की ऐसी भीड़ आमंत्रित की जाए। उस घटना के तुरंत बाद श्री वल्लभभाई पटेल ने अहमदाबाद में हुई जनसभा में कहा "वायसराय ने हिंदू महासभा के नेताओं को आमंत्रित किया, मुस्लिम लीग के नेताओं को बुलाया, तेलियों, मोचियों और अन्य लोगो की आमंत्रित किया" ।

यद्यपि श्री पटेल ने अपनी ईष्यालु और कटाक्षपूर्ण भाषा में तेलियों और मोचियों का नाम विशेष तौर पर लिया, परंतु उनका भाषण इस बात का संकेत करता है कि शासक वर्ग तथा कांग्रेस हाई कमान के सदस्य इस देश के दमित वर्गो के प्रति कैसी अपमानजनक भावनएं रखते थे।

यह जानना बेहतर होगा की पंडित नेहरू की क्या प्रतिक्रिया थी। पंडित जवाहरलाल नेहरू एक ब्राह्मण हैं, परंतु उनके विषय में प्रचलित है की वे स्वभाग से गैर-सांप्रदायिक हैं और धर्मनिरपेक्षता में विश्वास रखते हैं। परंतु तथ्य इसकी पुष्टि नहीं करते। किसी व्यक्ति के पिता का देहांत हो जाता है तो रूढ़िवादी हिंदू गंगा किनारे पंडो पुरोहितों से कर्मकांड कराते हैं। ऐसा संस्कार कराने वाले व्यक्ति को धर्मनिरपेक्ष नहीं कहा जा सकता। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने 1931 में अपने पिता की मृत्यु पर वही किया। उनको पट्टाभिसीतारमैया तक ने गैर-सांप्रदायवादी बताया है कि पंडित नेहरू को इस बात पर गर्व है कि वह ब्राह्मण है। यह जान कर उन लोगों को धक्का लगेगा जो पंडित नेहरू को भारत का उत्कृष्ट राष्ट्रवादी हिंदू नेता समझते है। श्री पट्टाभिसीतारमैया को यह पता होना चाहिए कि वह क्या कह रहे हैं। इससे भी बढ़ कर यह बात है कि पंडित नेहरू संयुक्त प्रांत से संबंध रखते हैं, वहां उनका पूरा नियंत्रण है, उस प्रांत के मंत्रिमंडल के सभी सदस्य ब्राह्मण हैं।

---

* 1. जे.ई. संजना द्वारा सेंस एंड नानसेंस इन पोलिटिक्स-गुजराती साप्ताहिक के रस्त रहबर, 14 जून, 1943 में उद्धत ।.

2. हिज इन्वीटेशन टु जवाहरलाल नेहरू, पृ. 16, वाई.जी. कृष्णामूर्ति।

3. सैंस एण्ड नानसैंस इन पोलिटिक्स धारावाहिक 12 रस्त रहबर, 1945

केवल पंडित ही ब्राह्मण होने की भावना से ओतप्रोत हैं। ऐसा कहा जाता है कि दिसंबर 1940 में दिल्ली में आल इंडिया वूमन्स कांफ्रेंस हुई थी, उसमें जनगणना में जाति घोषणा न करने के विषय में वार्तालाप हुआ था। श्री पंडित ने इस विचार को अस्वीकार कर दिया था और कहा था कि उन्हे ऐसा कोई कारण नजर नहीं आता, जिससे वह अपने को ब्राह्मण रक्त होने पर गर्व न करें। उन्होंने अपने को ब्राह्मण ही लिखाया था। ये लोग कौन है? उनकी हैसियत क्या है? श्री तिलक स्वराज्य आंदोलन के जनक कहलाते है। श्री पटेल और पंडित नेहरू का स्थान कांग्रेस में श्री गांधी के एकदम बाद आता है।

ऐसा समझा जाता है कि कांग्रेस हाई कमान के सदस्यों के विचार व्यक्तिगत तथा निजी हो सकते है। परन्तु ऐसा सोचना गलत होगा। ऐसी अनेक घटनाओं का उल्लेख किया जा सकता है, जब कांग्रेस के चुनाव प्रचार अभियान में ऐसी बातों का अमल किया गया।

1919 में जब से श्री गांधी ने कांग्रेस पर कब्जा जमाया, ब्रिटिश सरकार से स्वराज्य की मांग मनवाने के लिए कांग्रेसियों ने विधान सभाओं का बहिष्कार करना अपना उददेश्य बना लिया। इस नीति के अंतर्गत उन्होने न केवल चुनाव प्रचार से हाथ खींच लिया वरन् चुनावों में कांग्रेस ने कांग्रेस टिकट पर उम्मीदवार लड़ाने के विरोध में प्रचार किया, और यह भी कहा कि कोई हिन्दू निर्दलीय उम्मीदवार के रूप में भी खडा नहीं होगा। ऐसी नीति के गुणावगुण पर विवाद की आवश्यकता नहीं। परन्तु चुनाव में स्वतंत्र टिकट पर हिंदुओं को खड़े होने से रोकने के लिए कांग्रेस के रवैये का क्या अर्थ था? जो तरीके अपनाए गए थे, उनका लक्ष्य था विधान सभाओं को अपमान का निशाना बनाना। तदनुसार कांग्रेस ने विभिन्न प्रांतों में इस बात का प्रचार करने के लिए जलूस निकाले, जिनमें तख्तियों पर लिखा था "विधान सभाओं में कौन जाएंगे । केवल नाई, मोची, कुम्हार और झाडू लगाने वाले भंगी।" जलूस में नारे का प्रश्नवाचक भाग एक आदमी बोलता था कि विधानसभाओं में कौन जाएंगे, और भीड़ की ओर से उत्तर दिया जाता था, नाई। जब कांग्रेसियों ने देखा कि चुनावों में खडे होने से इस प्रकार डरा कर रोकने का उपाय कारगर नहीं सिद्ध हो रहा है तो उन्होंने इस से अधिक कठोर कदम उठाए। कांग्रेसियों ने यह माहौल बनाया कि कोई भी इज्जतदार उम्मीदवाद चुनाव में खड़े होने से कतराएगा, यदि उन्हे निश्चय हो जाए कि विधान सभाओं में उन्हें नाइयों, कुम्हारों और भंगियों के साथ बैठना पडेगा–इसी विश्वास पर कांग्रेसियों ने वैसे ही शूद्र समुदायों से संबंधित उम्मीदवारों को चुनाव में कांग्रेस टिकट से खड़ा किया और उन्हें निर्वाचित कराया। कांग्रेस की ऐसी निर्लज्ज करतूतों के कुछ उदाहरण दिए जा सकते है। वर्ष 1920 में चुनाव में

मध्य प्रांत विधानमंडल के लिए एक मोची(चुन्नू) को चुना। और एक नाई (अर्जुन लाल) को तथा पंजाब में एक भंगी बंसीलाल चौधरी को चुना। 1934 में कांग्रेस ने केंन्द्रीय विधानमंडल के लिए एक कुम्हार (भगत चंदी मल गोला) को चुना। अब मैं वर्ष 1943 में बम्बई की एक बस्ती अंधेरी के लिए नगरपालिका चुनाव का उल्लेख कर रहा हूं, जिसमें कांग्रेस ने अपमानित करने के तौर पर नगरपालिका के लिए एक नाई को चुना।

शासक जातियों की यह कैसी मनोवृत्ति है। शासक जातियों में शासित जातियों के प्रति कितना क्रोध है कि उन्होंने इनके साथ ऐसा घृणित व्यवहार किया और फिर भी उनकी आजादी के लिए लड़ने का दावा किया। शासित जातियों की कैसी त्रासदी है, जिसने अपने अपमान पर गर्व अनुभव किया और उसमें स्वेच्छा से शामिल हो गए। आयरलैंड में सिन्नाफेन पार्टी ने ब्रिटिश पार्लियामेंट का बहिष्कार किया। परंतु क्या उन्होंने अपने स्वार्थ के लिए अपने ही देश के लोगों के बारें में ऐसा वीभत्स रूप अपनाया। 1930 में विधानमंडल के बहिष्कार करने का आंदोलन बड़ा दिलचप्स था। 1930 में प्रांतीय में विधानमंडलों के लिए हुए चुनावों में जो घटनाएं घटी वे 1930 में गांधी जी के नमक सत्याग्रह के दौरान घटीं। मैं आशा करता हूँ कि भावी (कांग्रेसी इतिहासकार डा. पटटाभिसीतारमैया इस विषय में विफल रहें) कांग्रेसी इतिहासकार यह बताएंगे कि कैसे श्री गांधी ने वायसराय लार्ड इर्विन को नोटिस देने का निश्चय किया, जिसमें उन्होने अपनी मांगों की एक सूची किसी निश्चित समय तक मान लेने के लिए वायसराय को पेश की थी और वायसराय द्वारा मांगों के न मानने पर श्री गांधी ने किस प्रकार नमक कानून को निशाना बनाया और कैसे उन्होंने दांडी को सत्याग्रह के लिए चुना, किस प्रकार उन्होंने आंदोलन का स्वयं नेतृत्व करने का फैसला किया; किस तरह वे अहमदाबाद के आश्रम से गाजे बाजे के साथ निकले, कैसे अहमदाबाद की औरतों ने उनकी आरती उतारी, माथे पर विजय तिलक लगाया, कैसे श्री गांधी ने उन्हें विश्वास दिलाया कि अकेले गुजरात से ही भारत को स्वराज्य दिलाएगा; कैसे श्री गांधी ने घोषणा की कि बिना स्वराज्य प्राप्त किए वह अहमदाबाद वापस नहीं लौटेंगे। इन सबका उल्लेख करने में कांग्रेसी इतिहासकार असफल न होगा कि एक तरफ कांग्रेसी स्वराज्य की लड़ाई में व्यस्त थे, जिसके लिए वे कहते थे कि समस्त जनता के नाम से वे उस लड़ाई को जीतना चाहते थे और दूसरी ओर उन्हीं वर्षो में वे नीची जातियों पर भयानक अत्याचार कर रहे थे और खुले तौर पर उनका अपमान कर रहे थे।

VI

शासित जातियों के प्रति कांग्रेस हाई कमान की यह मनोवृत्ति इस सिद्धांत के

विपरीत रही है कि शासक जातियों का प्रांतो में प्रभुत्व मात्र एक संयोग है। कुछ और भी बातें हैं जो इस सिद्धांत के संयोग कहे जाने के विपरीत जाती हैं। वे तालिका संख्या 6 में दर्शायी गई हैं। ये कांग्रेस द्वारा चुनाव लड़ने के लिए छाटें गए उम्मीदवारों की शैक्षणिक योग्यताओं से संबंधित है। यह स्पष्ट है कि ब्राह्मणों के बारे में स्नातक और गैर-स्नातक के अनुपात का अंतर गैर-ब्राह्मण और अनुसूचित जातियों की अपेक्षा बहुत अधिक था। क्या वह एक संयोग ही था या एक नीतिगत मामला था। यह चयन इस प्रकार किया गया था कि इसके मापदण्ड को देखते हुए यह पक्का संदेह हो सकता है कि उम्मीदवारों के चयन में कांग्रेस का एक निश्चित सिद्धांत था कि ब्राह्मणों के मामले में उन उच्चतम योग्यता वाले ब्राह्मण का चयन किया जाए तथा अनुसूचित जातियों में उन उम्मीदवारों को प्राथमिकता दी जाए जिनकी योग्यता निम्नतम है। स्नातक और गैर-स्नातक का अंतर उस वास्तविक अंतर को प्रकट नहीं करता, जो ब्राह्मण और गैर-ब्राह्मण उम्मिदवारों की हैसियत और स्थिति से सम्बद्ध है। ब्राह्मण उम्मीदवार न केवल स्नातक थे, बल्कि अनुभवी और प्रतिष्ठित राजनीतिज्ञ भी थे। गैर-ब्राह्मण उम्मीदवार नए स्नातक थे, जो मात्र दूसरे दर्जे के राजनीतिज्ञ हो सकते थे।

कांग्रेस ने चुनाव के लिए उच्च शिक्षा प्राप्त ब्राह्मण उम्मीदवारों को ही क्यों छांटा? कांग्रेस ने चुनाव के लिए उच्च शिक्षा प्राप्त ब्राह्मणों और अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधि न्यूनतम शिक्षा प्राप्त क्यों थे? इसका एक उत्तर है। इसका उद्देश्य गैर ब्राह्मणों और शासित जातियों के प्रतिनिधित्व को कांग्रेस मंत्रिमंडल में शामिल होने से रोकना था। ऐसा नहीं हो सकता था कि बेहतर शिक्षित गैर-ब्राह्मण उम्मीदवार नहीं थे। प्रतीत होता है कि कांग्रेस ने जानबूझकर शिक्षित व्यक्ति के मुकाबले में अशिक्षित गैर-ब्राह्मण को प्राथमिकता दी थी, वह क्यों? क्योंकि शासक जातियों के विचार से शिक्षित गैर-ब्राह्मण की अपेक्षा अशिक्षित गैर-ब्राह्मण को चुनने में दो लाभ थे । एक तो यह कि अशिक्षित गैर-ब्राह्मण शिक्षित गैर-ब्राह्मण की अपेक्षा कांग्रेस हाई कमान का अधिक वफादार और कृतज्ञ होगा और कांग्रेस में शिक्षित गैर-ब्राह्मणों से मिल कर शासक जातियों के बने कांग्रेस मंत्रिमंडल के प्रति विद्रोह न कर सकेगा। दूसरे यह कि यदि स्नातक से कम योग्यता प्राप्त साधारण शिक्षित गैर-ब्राह्मण चुने जाते हैं तो उसका उददेश्य था कि कहीं कांग्रेस में शासक जातियों को धता बता कर, वे गैर-ब्राह्मण मंत्रिमंडल न बना ले। तीसरे यह कि कांग्रेस में जितने अधिक अशिक्षित गैर-ब्राह्मण होंगे, उतने ही कम अवसर गैर-ब्राह्मणों के समक्ष और वैकल्पिक मंत्रिमंडल बनाने के होंगे। इन परिस्थितियों में क्या इस बात में संदेह रह जाता है कि कांग्रेस जो आजादी की लड़ाई लड़ रही है वह आजादी केवल शासक जातियों की होगी।

किसी अन्य की नहीं? क्या इसमें संदेह है कि कांग्रेस शासक जातियां है और शासक जातियां ही कांग्रेस हैं? क्या इसमें कुछ संदेह बचा है कि जब 1937 में स्वराज्य प्रांतीय विधानमंडलों के रूप में आया तो कांग्रेस ने इरादतन और निर्लज्जता से शासक जातियों को सत्तासीन कर दिया?

VII

उपरोक्त तथ्यों से निस्सदेंह सिद्ध होता है कि कांग्रेस द्वारा शुरू किया गया स्वतंत्रता-संग्राम भारतीय स्वतंत्रता के लक्ष्य और उददेश्य से भटका हुआ है और इस भटकाव में कांग्रेस का हाथ है। इसके परिणाम बहुकोणीय हैं। जो भारत की शासक जातियों के दृष्टिकोण और सामाजिक दर्शन को न जानता हो उसके लिए इसके फलितार्थ को समझना संभव नहीं है।

पहले ब्राह्मणो को लीजिए । इतिहास के अनुसार वे भारत की शासक जातियों में सब से अधिक शक्तिशाली और अधिकार संपन्न हैं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि वे शासित वर्ग के घोर शत्रु हैं।

शुद्र और अछूत हिन्दुओं की आबादी 80 या 90 प्रतिशत हैं। ब्राह्मण उनके घोर शत्रु रहे हैं। दीन-हीन शासित जातियां नीचे गिरी हुई है, अपमानित है, निराश हैं और कुंठित हैं। वह केवल ब्राह्मणों के कारण और उनके दर्शन के कारण ही हुआ है। इस ब्राह्मणवाद के दर्शनशास्त्र के 6 धर्म सूत्र हैं : (1) विभिन्न वर्गो में असमानता (2) शुद्रों और अछूतों की पूरी बेवसी (3) शूद्रों और अछूतों के लिए शिक्षा द्वार बंद होना (4)सत्ता और अधिकार से शुद्रों और अछूतों को पूर्णतः वंचित रखना (5) शुद्रों और अछूतों को संपत्ति संचय से वंचित रखना और (6) स्त्रियों की पूर्ण अधीनता एवं दमन। असमानता ब्राह्मणवाद का आधिकारी सिद्धांत है और दलितों द्वारा समानता के लिए प्रयास करने के कारण उनके दमन करने पर उसे पश्चाताप नहीं होता, बल्कि यह उसका परम कर्तव्य है। कुछ देश ऐसे है, जहां कुछ लोगो के सिवाय अन्य लोगो को शिक्षा नहीं मिल पाती। परन्तु भारत की एक ऐसा देश है जहां प्रबुद्ध वर्ग, जैसे कि ब्राह्मणों ने शिक्षा पर एकाधिकार ही नहीं कर रखा, बल्की निम्न वर्गो के लिए शिक्षा ग्रहण करना अपराध मान कर जीभ काट लेने की सजा अथवा अपराधी के कान में पिघला हुआ सीसा डालने की व्यवस्था है। इसका परिणाम यह हुआ कि ब्राह्मणों ने सदियों तक शासित जातियों को शिक्षा के अधिकार से वंचित रखा। आज भी ब्राह्मण उनकी शिक्षा का उतना ही विरोधी है जितना 1891 में जनगणना-आयुक्त श्री बेन्स ने लिखा है:-

"शिक्षा के विस्तार में दूसरा प्रतिरोधी प्रभाव देश में प्राचीनकाल से विद्यमान

> एक ऐसे परंमपरागत वर्ग की मौजूदगी है जिसका मुख्य उददेश्य पूरे ज्ञान विज्ञान पर अपना एकाधिकार जमाए रखना है ताकि वे अपनी सामाजिक श्रेष्ठता को कायम रख सके। यह पंडा-पुरोहित वर्ग जानता है कि केवल अशिक्षितों पर राज कर सकते हैं। लेखन-कार्य करने वाली जातियों के विकास पर ब्राह्मणों का विरोध पहले ही वर्णित किया जा चुका है और जनसाधारण में शिक्षा के प्रसार को लेकर आजकल दोनों के बीच चल रहा मनमुटाव लंबे अनुभव के पश्चात ही प्रकट हो सकेगा। यह ठीक है कि ब्रिटिश सरकार को प्राथमिक शिक्षा के लाभ और आवश्यकता के अहसास की कुछ प्रतिक्रिया शिक्षित जातियों में हुई हैं, परंतु अभी उस पर सैद्धांतिक सहमति ही हुई है। मौजूदा हालात में इसकी सहज ही में अनदेखी नहीं कि जा सकती। यह स्वागत योग्य भी है कि इनमें से कई जातियों को जीवनयापन के अवसर मिलते हैं, क्योकि उन्हें अध्यात्मिक शिक्षा तक ही केंद्रित रहती है, जिसका लाभ उठाने की स्थिति में वे हैं।

कांग्रसी राजनीतिज्ञ शिकायत करते हैं कि अंग्रेज भारतीय जनता को पूर्णतया शक्तिहीन करके शासन चला रहे हैं। परन्तु वे भूल जाते हैं कि शुद्रो और अछूतों को शक्तिहीन करने का कानून ब्राह्मणों द्वारा लागू किया गया था। वास्तव में शूद्रों और अछूतों को शक्तिहीन रखने में ब्राह्मण अटल विश्वास रखते हैं। जब ब्राह्मणों को शस्त्र धारण करने की आवश्यकता हुई तो अपनी सुख-सुविधाओं की सुरक्षा के लिए उसने शस्त्र धारण कर लिए। उन्होंने शूद्रों तथा अछूतों को बिना उनकी मुसीबतों को सुने शस्त्रहित ही रखा। यदि आज भारत की अधिकांश जनसंख्या में लोग पौरूषहीन हैं, उनका मनोबल नष्ट हो गया है और अमानवीय हैं, तो उसका मुख्य कारण है ब्राह्मणों की शूद्र-दोही नीति, जिसे वे युग युगांतर से अपनाते चले आ रहे हैं। कोई भी ऐसी सामाजिक कुरीति तथा सामाजिक कुप्रथा नहीं है, जिस पर ब्राह्मणों के मुहर न लगी हो। मानस का मानव के प्रति अमानुषिक व्यवहार जैसे कि जात-पात की भावना, अस्पृश्यता, उच्च पद पर पहुंचने पर रोक, योग्यता की अनदेखी करना ब्राह्मणों का धर्म है। यह मान लेना गलत न होगा कि किसी मनुष्य द्वारा दूसरे के साथ ऐसे पाश्विक व्यवहार करना ही ब्राह्मण धर्म है, क्योकि ब्राह्मणों ने समाज की पतिततम प्रथा को शह दी, जिससे भारत में स्त्रीयों को जितने घोर कष्ठ उठाने पड़े उनकी संसार के किसी अन्य भाग से तुलना नहीं की जा सकती। भारत में विधवाओं को सती होने के नाम पर जीवित आग में झोंक दिया जाता था। ब्राह्मणों ने सती प्रथा को पूर्ण समर्थन दिया। विधवा स्त्रियों को पुनर्विवाह करने पर प्रतिबंध लगा दिया।

ब्राह्मणों ने इस आचरण को दृढता से स्थापित किया। बालिकाओं का विवाह आठ वर्ष की अवस्था में पहले कर दिया जाता था और पति को अधिकार था कि किसी भी समय वह विवाह तोड़ सकता था, चाहे वह लड़की पूर्ण यौवन प्राप्त कर रजस्वला आयु की हुई हो अथवा नहीं । ब्राह्मणों ने इस सिद्धांत को पूरा प्रोत्साहन दिया। शुद्रों, अछूतों और नारी के लिए ब्राह्मणों ने जो घृणित विधान रचे संसार के किसी भी भाग में किसी बौद्धिक वर्ग में उनका सानी नहीं। क्योकि संसार के अन्य भागों में बौद्धिक वर्ग न अपने ही देश के अशिक्षित लोगों को सदा के लिए अज्ञानता और निर्धनता के गर्त में धकेलने को अपनी स्थिति के दुरूपयोग का आविष्कार नहीं किया जैसा कि भारत में ब्राह्मणों ने किया है। आज का प्रत्येक ब्राह्मण अपने पूर्वजों द्वारा प्रतिपादित ब्राह्मणवाद के दर्शन में पूरा विश्वास रखता है। यह हिन्दू समाज में एक निराली ही चीज है। शूद्र और अछूत ब्राह्मण के लिए विदेशी जैसे हैं जैसा कि जर्मन के लिए फ्रांसीसी, जैसे कि यहूदी के लिए गौर यहूदी, गोरों के लिए नीग्रो। उसके और निम्न वर्गीय शूद्रों तथा अछूतों के बीच यह वास्तविक गहरी चोड़ी खाई है। ब्राह्मण उनसे केवल परहेज नहीं करता, बल्कि उनके प्रति कठोर है। उनके आपसी संबंध में विवेक और न्याय की कोई गुंजाइश नहीं।

बनिया इतिहास में निकृष्टतम अमरबेल के नाम से पुकारा जाता है। उसकी संस्कृति और प्रवृत्ति मात्र धन बटोरना है। वह उस पिस्सू के समान है जो किसी भयंकर महामारी के समय तेजी से पनपता है। उसमें और बनिए में केवल इतना अंतर है कि पिस्सू स्वयं कोई महामारी नहीं फैलाता, जबकि बनिया महामारी पैदा करता है। वह अपने धन को उत्पादक कार्यो में नहीं लगाता, बल्की गरीबी और अधिक गरीबी बढाने के लिए अनुत्पादक कार्यो के लिए ऋण देने में लगाता है। वह ब्याज पर जीता है, जिसे वह उचित और न्यायपरक तथा धार्मिक मानता है। ब्राह्मण न्यायधीश की सहायता से अपना धंधा फैलाता है। ब्याज, चक्रवृद्धि ब्याज सब जोड़ते हुए, वह करोड़ो निर्धनों को अपने जाल में फांस लेता है। कर्जदार जितना भी ऋण अदा करता है, कर्जा बढ़ता ही जाता है। ऐसा करने में बनिये को किसी जमीन की आवश्यकता नहीं । वह इसे छल-कपट नहीं समझता और सभी तरह से वाक्छल करता है। राष्ट्र पर उसका पूरा नियंत्रण होता है। सारे निर्धन भूखे नंगे बनिए के बंधक बन कर रह गए हैं।

प्रत्येक देश में शासक वर्ग होते हैं। कोई देश उनसे मुक्त नहीं है। परंतु क्या विश्व में कही और ऐसी स्वार्थी, दूषित, खतरनाक और भ्रष्ट मनोवृत्ति मौजूद है जिसका इतना जघन्य और कुख्यात सोच हो जो शासित जातियों को पददलित करने की हामी हो, ताकि शासक जातियों की शानोशौकत को कायम रखा जा सके। मैं किसी को

नहीं जानता। यह सच है कि अन्य देशों में शासक दल है जो लोगों में उठ-बैठ नहीं रखते, जो उनके बराबर के नहीं है। न ही वे नीचे से ऊपर उठ चुके लोगों के साथ बैठनें में एतराज करते है, जन्म से अपने से अलग वर्ग के साथ मिलने जुलने में रूचि नहीं रखते और शासित जातियों को अपना स्तर सुधारने से रोकने के लिए हर तरीका अपनाते हैं।

VIII

फ्रांसीसी क्रांति से पूर्व फ्रांस में शासक वर्ग था । जापान में 19वीं शताब्दी के आठवें दशक के पूर्व शासक जातियां थी, जब जापान ने अपने संविधान को आधुनिक रूप देने का फैसला किया। इन दोनों देशो में शासक वर्ग ने महसूस किया कि यह राष्ट्र्य संकट की घड़ी है, इसलिए उन्होने अपने पुराने अधिकारों और विशेषाधिकारों को त्यागने का निर्णय किया ताकि कुलीन तंत्र से सहज रूप से लोकतंत्र में संक्रमण हो सके।

फ्रांस में जब क्रांति ने अंगडाई ली और जनता ने शासक जातियों से समानता की मांग की तो शासक जातियों ने स्वच्छा से सत्ता और अधिकार छोड़ कर अपने को जनता में शामिल कर लिया। जब स्टेट्स जनरल को बुलाया गया उस समय जो हुआ उससे यह स्पष्ट है। कामन्स के 600 प्रतिनिधि थे तथा पादरियों और सामंतो के प्रत्येक के तीन-तीन सौ थे। प्रश्न यह उठा कि 1200 सदस्य कैसे बैठेंगे, बहस करेंगे और मतदान करेंगे। कामन्स ने आग्रह किया कि सभी पक्ष एक चेम्बर में एकत्र हों और एक मत के आधार पर मतदान करें। पादरियों तथा सामंतो ने इस स्थिति को स्वीकार नहीं किया, क्योंकि ऐसा करने का अर्थ होता अपनी अमूल्य परंपराओं, सुविधाओं का परित्याग करना। तब भी उनमे से अधिकांश ने कामन्स की मांग स्वीकार कर ली और फ्रांस को स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व पर आधारित संविधान दिया।

जापान के शासक वर्ग ने वर्ष 1855 से 1870 के दौरान सामंतशाही को त्याग कर वर्तमान शासन पद्धति अपनाई, वहां शासक वर्ग फ्रांस के शासक वर्ग की अपेक्षा अधिक देशभक्त था। जैसा कि जापान के इतिहास का विद्यार्थी जानता है, जापानी में चार वर्ग थे : (1) दमियो, (2) समुराई, (3) हेमिन अथवा जनसामान्य, तथा (4) ईटा अथवा बहिष्कृत। इन जातियों के सीढ़ी दर सीढ़ी ऊंचे नीचे वर्ग थे। सबसे नीचें ईटा थे, जो हजारों की संख्या में थे। उनसे ऊपर हेमिन थे, जो ढाई-तीन करोड़ थे। हेमिन से ऊपर समुराई थे, जिनकी संख्या 20 लाख थी, जिनके हाथों में हेमिनों का जीवन मरण बंद था। उससे ऊपर दमिया अथवा बड़ी जागीर वाले सांमत थे, जिनका नीचे के तीनों वर्गो पर पूर्ण शासन था। उनकी संख्या 300 थी। दमिया और समुराई

लोगों ने समझ लिया की जब तक वर्गवाद को तिलांजलि नहीं दी जाएगी, सभी को समानता और समान नागरिकता देना और समान सामंतवाद को त्याग देना असंभव है। तदनुसार दमिया लोग जो राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत थे और राष्ट्रीय एकता में कोई बांधा उत्पन्न नहीं करना चाहते थे, अपनी सुविधाओं का परित्याग करने के लिए आगे आए और सर्वसाधारण में शामिल हो गए। 5 मार्च 1869 को उन्होंने सम्राट को, जो ज्ञापन दिया था, वह इस प्रकार था:-

"हम जिस भूमि पर रहते हैं, सम्राट की है। जो अनाज हम लोग खाते है, सम्राट के आदमियों द्वारा पैदा किया जाता है। तो हम किसी जायदाद को अपनी कैसे कह सकते है? अब हम स्वेच्छा से अपनी संपत्ति सादर समर्पित करते हैं और हमारे समुराई तथा जनसामान्य भी आपसे अनुरोध करते हैं कि सम्राट उन लोगों को संपत्ति देने की कार्यवाई कराए जिन्हे वास्तव में यह मिलनी चाहिए और उन्हें दंडित करें, जो उस संम्पति के रखने का अधिकारी नहीं है। शासन विभिन्न वंशो और जातियों की भूमि सम्पति का हस्तांतरण करने और वर्तमान सांचे में ढालने के लिए* आवश्यक आदेश जारी करें। दीवानी एवं दंड संहिता और सैनिक कानूनों में एकरूपता लाकर युद्ध आयुधों का निर्माण हो। साम्राज्य के सभी कार्यकलाप सम्राट को सौंप दिए जाएं।"

जापान में शासक वर्ग की तुलना भारत के शासक वर्ग से कैसे की जा सकती है? यह पूर्णतया इसके विपरीत है। दुर्भाग्य से अभी भारत में शासित जातियों द्वारा शासक जातियों का जुआ उतार फैंकने का इतिहास नहीं लिखा गया है, परन्तु उन्हें इस विषय में ज्ञान है, वे जानते है कि भारत में शासक वर्ग भारतीय स्वतत्रंता की बलिवेदी पर ऐसा बलिदान करने का संकल्प नहीं कर सकता। राष्ट्रीयता के नाम पर अपनी सुख-सुविधाओं का परित्याग करने के बजाय भारत का शासक वर्ग अपनी सुख-सुविधाओं को स्थायी बनाए रखने के लिए हर तरीका अपनाता है। वह जो हथियार अपनाता है उनमें पहला है राष्ट्रीयता का नारा। जब कभी शोषित वर्गो के लोग सरकारी सेवाओं में, कार्यपालिका में तथा विधायिका में आरक्षण की मांग करते हैं, तो शासक जातियां "राष्ट्रीयता खतरे में है" की दुहाई देती है। कहते है की यह आरक्षण क्या बला है? इस संक्षेप में इस प्रकार कहा जा सकता है कि वे उसे हीले हवाले से टालना चाहते है जबकी शासक जातियां शासित जातियों के अपना अस्तित्व बनाए रखने के संघर्ष को दबा नहीं पाएंगी। आरक्षण की मांग कोई पाप नहीं है और न ही यह कोई अनुचित मांग है। शासक जातियों की इस पर क्या प्रतिक्रिया है? वे इसकी भर्त्सना करने और इसका मखौल उड़ाने का मौका नहीं चूकते। लोगों सक

* रोमेन्स ऑफ जापान लेखक जेम्स ए.बी. सरेर ।

कहा जाता है कि यदि हमें राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त करनी है, तो हमें राष्ट्रीय एकता बनाए रखनी चाहिए और सरकारी सेवाओं में, कार्यपालिका में तथा विधान सभाओं में आरक्षण आदि राष्ट्रीय एकता के प्रतिकूल है। इसलिए जो राष्ट्रीय स्वतंत्रता में दिलचस्पी रखते हैं, उन्हे इस प्रकार के आरक्षण की मांग का डट कर विरोध करना चाहिए। यह है भारत के शासक वर्ग की मनोवृत्ति। भारत की शासक जातियां जापान की शासक जातियों से पूर्णतया विपरीत दृष्टिकोण रखती हैं। यह तो राष्ट्रीयता के नाम का दुरूपयोग करना है। शासक जातियों को उसके दुरूपयोग का कोई पश्चाताप भी नहीं है।

शासक जातियों ने जो दूसरा तरीका अपनाया है, वह है कि शासक जातियों के कुछ प्रतिष्ठित सदस्य इस हद तक पहुंच गए हैं की उन्होंने शोषित जातियों की मांग को बकवास और हास्यास्पद बताते हुए प्रचार करने के लिए कटाक्षपूर्ण व्यंग्यात्मक पेरोडी लिखी। डाक्टर आर.पी. परांजये जो आस्ट्रेलिया में नए हाई कमिश्नर बना कर भेजे गए थे उन्होंने पेरोडी लिखी थी* जो आधुनिक उदारवाद का दंभ भरते हैं। उन तक से यह न बना कि वे अपने मनोभावों को दबा पाते। वे इतना घटिया मखौल करने से बाज नहीं आए। सभी पेरोडियों में यह सबसे तीखी थी। जब उनकी ये रचनाएं छपीं तो इससे शासित जातियों में बहुत क्षोभ फैला।

शासक जातियां मेहनतकश जातियों की मांग का विरोध करने के लिए जो दलील देती है, उसका आधार कार्यक्षमता का सिद्धांत बताया जाता है। उसे देशभक्ति का रंग देने के लिए शासक जातियां कहती हैं। भारत का उद्देश्य सक्षम राजनीतिक ढांचा बनाए रखना होना चाहिए और यह तभी हो सकता है जब सत्ता के क्षेत्र में श्रेष्ठतम व्यक्तियों को रखा जाए। इस तर्क से विदेशी प्रभावित हुए लगते हैं और इसी कारण वे आरक्षण का विरोध न भी करें पर उसकी आलोचना अवश्य करते है। इसलिए यह आवश्यक कि इस तर्क का औचित्य जांचा परखा जाए और जो लोग यह तर्क देते हैं कि उनकी मनोभावना क्या है, इसका पता लगाया जाए।

इस सिद्धांत पर किसी को कोई आपत्ति नहीं कि योग्यतम व्यक्ति की जगह उससे कम

---

* डॉ.आर.पी. परांजपे द्वारा लिखित 'पेरोड़ी गुजरात पंच के मई 1926 के अंक में छपी थी। इसका शीर्षक था "ए पीप इन टू द फ्युचर"। शासक जातियों के लेखों का यह देखने योग्य नमूना है। साम्प्रदायिक आरक्षण के सिद्धांत के अनुसार कुछ कल्पित घटनाओं पर यह एक कटाक्ष है। क्याकि पत्रिका आसानी से उपलब्ध नहीं है मैं उसे नए सिरे पेश कर रहा हुं :

निम्नांकित सार संक्षेप 1930-50 के दौरान प्रकाशित आयोंगों के प्रतिवेदनों पुलिस के अदालती मामलों के रिकार्डो, अदालती मुकदमों, परिषद कार्यवाहियों, प्रशासननिक रिपोर्टो आदि से गुजराती पंच के पाठकों के लिए प्रकाशित की गई है।

योग्य व्यक्ति को और साधारण योग्यता के व्यक्ति की जगह बिल्कुल अयोग्य व्यक्ति को न लगा दिया जाए। परंतु ऐसा तर्क भारतीय इतिहास की घटनाओं पर दृष्टिपात करने से पूर्णतया निरर्थक सिद्ध होता है, क्योंकि भारतीय इतिहास के अनुसार जो योग्यतम व्यक्ति चुना जाता था वह शासक जातियों से ही संबंधित होता था। शासक जातियों के विचार से यह सिद्धांत बहुत ठीक था ।

भारत सरकार के लिए शाही आयोग की 1930 की रिपोर्ट

भारत में विभिन्न समुदायों को प्रतिनिधित्व देने के लिए गहराई से विचार किया गया है। पिछली जनगणना के आंकड़ो को ध्यान में रखकर उसके आधार पर हम सभी दावों पर मोटे तौर से ही लोगों को संतुष्ट कर सकते है क्योकि उस समय तक इस समस्या का सम्पूर्ण समाधान नहीं हो सकता जब तक की ऐसी सरकार का गठन न हो जाए जिसमें देश के प्रत्येक नागरिक को इसका सदस्य न बना दिया जाए क्योकि कई समुदायों का समान आधार नहीं है। हमने संविधान मे 2375 को मौलिक संख्या बताया है और अनेक समुदाय के भागों में उसे विभाजित कर दिया है जैसा कि संलग्न प्रतिवेदन पूर्व में उपलब्ध है। प्रत्येक समुदाय को उसके दावें के अनुसार प्रतिनिधित्व दिया जायेगा और देश में सारी नियुक्तियां, विभिन्न संस्थाओं की सदस्यता और दरअसल हर चीज का वितरण यथासंभव अनुसूची के अनुसार किया जायएगा। वाइसराय की कार्यकारी परिषद में 475 सदस्य होंगे जिनका निर्वाचन प्रत्येक समुदाय के सदस्यों के पांचवे भाग के हिसाब से किया जाएगा और तीन सदस्य एक-एक साल तक पद पर रहेंगे ताकि पांच वर्षो के दौरान प्रत्येक समुदाय को उसका सही अंश प्राप्त हो सके । प्रत्येक उच्च न्यायालय में 125 न्याधीश होंगे। प्रत्येक न्यायाधीश का कार्यकाल एक वर्ष होगा। हांलाकि इस व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक वर्ग को 19 साल के अंतराल पर अपना सही हिस्सा मिलेगा। सभी दावों से निबटने के लिए अन्य नियुक्तियां भी इसी आधार पर की जाएंगी।

II

भारत सरकार की अधिसूचना 1932

1931 के भारत सरकार अधिनियम के प्रावधान के अनुसार महामहिम सम्राट ने निम्नांकित 475 व्यक्तियों को गवर्नर जनरल की कार्यकारी परिषद का सदस्य मनोनीत किया है। :

267 मातादीन रामदीन (जाति नाई) आयुर्विज्ञान विभाग में शल्य चिकित्सा शाखा का प्रभारी सदस्य।

372 अल्ला बक्स पीरबक्स (मुसलमान ऊंटवान) सेना में ऊंट परिवहन प्रभाव का प्रभारी

433 रामास्वामी (जाति आन्ध्र भंगी) लोक सेवा निर्माण विभाग में सड़क स्वच्छता शाखा प्रभारी

437 जगन्नाथ भट्टाचार्य (कुलीन, ब्राह्मण, पुरोहित) पंजीकरण विभाग में घरेलू अनुभाग प्रभारी।

IV

(सभी स्थानीय सरकारों को पत्र 1934)

भारत सरकार की सहमति से विधान सभा द्वारा पारित प्रस्ताव के अनुरूप मुझे यह कहने का आदेश हुआ है कि अबसे सरकार में प्रत्यक समुदाय के सदस्य को बारी बारी निक्युक किया जाए चाहे उम्मीदवार की योग्यता कुछ भी हों

परंतु क्या वह सिद्धांत मेहनतकश समुदाय के दृष्टिकाण से ठीक कहा जा सकता है? क्या श्रेष्ठ जर्मन व्यक्ति फ्रांसीसियों के लिए भी श्रेष्ठ हो सकता है? क्या तुर्क

V

(बम्बई सरकार के राजपत्र 1934 की अधिसूचना)

बम्बई सरकार दिसम्बर में निम्नांकित नियुक्तियां करेगी। विभिन्न नियुक्तियों के लिए प्रार्थी प्रत्येक पद के सामने लिखी जाति से सरकार के आदेश संख्या दिनांक 30 नवम्बर 1934 के अनुसार बारी-बारी से रखें जाएगें।

1. मुख्य अभियंता सिंचाई सिंध : उत्तरी केनरा का कुनबी ।
2. एलकिंस्टन कॉलेज बम्बई के लिए संस्कृत प्रवक्ता : सिंध का बलूची पहान।
3. महामहिम के अंगरक्षको का कमान्डैंट : उत्तरी गुजरात का माखाड़ी ।
4. सरकार का वास्तुकार परामर्शदाता : बादारी दक्षिण से खाना बदोंश ।
5. इस्लामी संस्कृत निदेशक : करहदा ब्राह्मण।
6. शरीरशास्त्र प्रवक्ता (ग्रांट मेडीकल कालिज) मुसलमान कसाई।
7. यर्वदा जेल अधीक्षक : घंटीचोर
8. मद्यनिषेद के दो आयोजक : धारला (भील खेड़ा)(पंच महल)

VI

(उच्च न्यायालय के एक मुकदमें की रिपोर्ट 1935)

क.ख. (जाति तेली) पर अपने सोते हुए पिता की निर्मम हत्या का आरोप था। न्यायाधीश ने अभियुक्त के विषय में सुनवाई की। जूरी ने उसे अपराधी ठहराया और अभियुक्त के वकील से कहा कि वह कुछ कहना चाहता है। वकील श्री बोमनजी ने कहा कि वह फैसले से सहमत है परंतु कानून के अनुसार अभियुक्त को किसी भी दशा में फांसी नहीं दी जा सकती क्योंकि इस साल सात मामलों में इन्हें सजा दी जा चुकी है इनसे दो तेलियों को पहले ही फांसी की सजा दी जा चुकी है और भारत के संविधान के अनुसार निर्धारित कोटे में से कई अन्य समुदायों का कोटा पूरा नही हुआ है, तेलियों का कोटा पूरा हो चुका है। विद्वान न्यायाधीश ने बचाव पक्ष के वकील की दलील स्वीकार कर ली और अभियुक्त को बरी कर दिया।

VII

अन्नाजी रामचन्द्र (चितपावन ब्राह्मण) हाथ में लम्बा चाकू लिए पूना की गलियों में हर आने जाने वाले पर आक्रमण करते हुए पाया गाया । जब उसे मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया तो पुलिस ने बताया कि वह हाल ही में पागलखाने से रिहा किया गया था। अपनी गवाही में पागलखाने के अस्पताल के अधीक्षक ने कहा कि अन्नाजी पिछले तीन वर्षो से अस्पताल में एक खतरनाक रोगी के रूप में रखा गया था। परंतु क्योंकि चितपावनों का निर्धारित कोटा है और अन्य समुदायों का कोटा अवधि पूरी नहीं हुई है इसलिए उसे आगे और नहीं रखा जा सकता था और चितपावनों के साथ रिआयत नहीं बरती जा सकती । इसलिए उसे सरकार के आदेश संख्या के अनुसार छोड़ दिया गया। मजिस्ट्रेट ने अन्नाजी की रिहाई के आदेश दे दिए।

VIII

(बम्बई प्रेसीडेंसी के जेल प्रशासन की 1937 की रिपोर्ट का सार-संक्षेप)

हर तरह की सावधानियां बरतने के बावजूद जेल के सदस्य प्रत्येक समुदाय के लिए निर्धारित कोटा पूरा नहीं कर सके । उस अभाव को पूरा करने के लिए अधीक्षक ने सरकार से निर्देश भेजने का अनुराध किया है।

यूनानियों के लिए श्रेष्ठ हो सकता है? क्या कोई पोलैंडवासी यहूदी के लिए श्रेष्ठ हो सकता है? इन प्रश्नों के सही उत्तर मिलने में कोई संदेह नहीं हो सकता।

इस प्रश्न का उत्तर देते समय दो बातों की अनदेखी नहीं कि जा सकती। पहली बात तो यह कि महान व्यक्ति नेकदिल भी हो यह आवश्यक नहीं। दूसरी बात यह कि वह व्यक्ति संवेदनहीन मशीन नहीं होता। महान व्यक्तियों पर भी यह बात लागू होती है। कुछ के प्रति उसकी सहानुभूति दूसरों के प्रति घृणा द्वेष होता है। उस पर जातीय सहानुभूति एंव वर्गीय द्वेषभाव करने का दोषारोपण किया जा सकता है। इन बातों पर ध्यान देने से प्रकट होता है कि शासक वर्ग से संबंधित श्रेष्ठ व्यक्ति मेहनतकश वर्गों के दृष्टिकोण से बहुत निकृष्ट हो सकता है।

सरकार का संकल्प : सरकार ने इस पर गंभीर अप्रसन्नता प्रकट की है कि जेल के महानिरीक्षक ने कर्तव्यपालन में बहुत ही लापरवाही बतरी है। कोटा पूरा करने के लिए विभिन्न समुदायों से गिरफ्तारियों के लिए तुरंत कदम उठाए जाएं। यदि वांछित संख्या में पर्याप्त व्यक्ति न पकड़े जा सके तो मौजूदा कैदियों में से उतनो को रिहा कर दिया जाए जितनों के बाद कोटे का स्तर समान हो जाए ।

IX

(विधान परिषद की 1940 की कार्यवाही)

श्री चनप्पा ने पूछा, क्या सरकार का ध्यान इस ओर दिलाया गया है कि पाली की ताजा एम.स. परिक्षाओं की सूची में मांग गरूदी के लिए कोटा पूरा नहीं किया गया है?

माननीय दामू शरॉफ (शिक्षा मंत्री) : विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार ने सूचित किया है कि मांग गरूदी जाति का कोई छात्र परीक्षा में नहीं बैठा।

श्री चेनप्पा : क्या सरकार उस समय तक परीक्षाओं पर रोक लगाएगी जब तक कि कोई परीक्षार्थी परीक्षा में बैठे और यदि विश्वविद्यालय सरकार के आदेशो की अवज्ञा करें तो विश्वविद्यालय का अनुंदान रोक दिया जाए और विश्वविद्यालय अधिनियम में संशोधन कर दिया जाए ?
माननीय सदस्य : सरकार इस सुझाव पर अनुकूल ढंग से विचार करेगी (तालियां)

X

(टाइम्स आफ इंण्डिया से सार संक्षेप 1942)

वधिक श्री -- को कल शाम यह पूछने के लिए बुलाया गया कि जे.जे. अस्पताल में रामजी सोनू की शल्य चिकित्सा में मृत्यु कैसे हुई । डॉ तनु पाण्डव (जाती नाई) ने अपने बयान में कहा कि उसने ऑप्रेशन किया था। वह पेट के फोड़े में चीरा देना चाहता था परंतु उसका छुरा हृदय में घुस गया और रोगी मर गया । जब उससे पूछा गया कि क्या उसने कभी ऐसा ऑपरेशन किया है कि उसे केवल एक दिन पहले ही मुख्य शल्य चिकित्सक नियुक्त किया गया है, क्योकि अब उसके समुदाय की बारी थी और उसने कभी शल्य चिकित्सा उपकरणों को नहीं छुआ था सिवाय हजामत बनाने के लिए उस्तरे के इस्तेमाल के । जूरी ने इस मृत्यु को गलत प्रयोग करार दिया ।

मात्र कार्यक्षमता को ही कसौटी नहीं माना जा सकता। यदि इसे ही कसौटी मान लिया जाए, तो परिणाम यही होगा कि फ्रांस के मामलों को जर्मन देखेंगे और तुर्की के रूस और चीनियों के मामलो को जापानी देखेंगे। जो लोग अच्छी सरकार के बारे में खाली कार्यक्षमता को तूल देते हैं वे फ्रांसीसियों, तुर्की और चीनियों से इस बारे में बात करें और पूछें कि इस बारे में उनके क्या विचार है, और उनके परिपालन के क्या परिणाम सामने आएंगे । एक भौंदू व्यक्ति भी अंदाजा लगा सकता है कि इसका क्या उत्तर होगा। मुझे विश्वास है कि इस सिद्धांत की खिचड़ी ऐसी पकेगी कि वह एकदम बकवास होगी। भारत में यह सिद्धांत कैसे लागू हो सकता है, जहां शासक जातियां और मेहनकश जातियों का अंतर वैसा ही है, जैसा फ्रांसीसी और जर्मन, तुर्क और रूसियों और चीनियों और जापानियों के बीच है? वास्तविकता तो यह है कि भारत की स्वार्थलिप्त शासक जातियों को यह ख्याल ही नहीं है कि खाली कार्यक्षता का सिद्धांत कितना बेहूदा है और समझती हैं कि वह अपनी मर्जी का कानून बना सकती है, उन्हे इस बात की परवाह नहीं कि मेहनकश जातियों का इस मामले में क्या विचार है।

शासक जातियां यह जानने की परवाह नहीं करती कि उन्होंने क्या-क्या हथकंडे अपना कर अपना वर्चस्व स्थापित किया है। उन्हें अपने मन को टटोलने की जरूरत ही महसूस नहीं होती, कुछ तो इसलिए कि वे सोचते हैं कि इससे कोई गरज नहीं कि उन्होंने सत्ता कैसे हथियाई; बस इतना ही काफी है कि वे मेहनतकश जातियों को अपने पांव तले दबा कर रखने की स्थिति में है। मान लिजिये कि शासक जातियां यह जानना जरूरी न समझें कि वे कैसे तीसमारखां बन बैठी तो उन्हें कैसे असलियत का पता चलेगा? यह जान कर आश्चर्य होगा कि शासक जातियों ने ये अधिकार इसी आरक्षण के बलबूते पर बटोरे हैं, जिसको आज वे सांप्रदायिकता के नाम पर उछाल कर विरोध कर रहें है। बहुतों के लिए इस कथन को पचा पाना मुश्किल होगा। जिन्हें इसमें कोई संदेह हो उन्हें और कुछ करने की जरूरत नहीं । बस वे मनुस्मृति के पन्ने पलट कर देख लें, जो हिंदुओं का बाइबिल है। उसमें उन्हें जो देखने को मिलेगा, उससे उनका दिल बैठ जाएगा जब वे पांएगे कि इन मठाधीश जातियों के सरगना ब्राह्मणों ने राजसत्ता बौद्धिकता के बल पर अर्जित नहीं की है-बौद्धिकता किसी की बपौती नहीं है-बल्कि मात्र सांप्रदायिकता के नाम पर वे इस स्थिति में आए। मनुस्मृति के विधान के अनुसार पुरोहित के पद, सम्राट के कुलगुरू और प्रमुख सलाहकार न्यायकर्म और दंडाधीश के पद और सम्राट के मंत्रियों के पद ब्राह्मणों के लिए सुरक्षित थे। यहां तक कि सेना के सेनापति के पद के लिए उसकी संस्तुति की गई कि वही योग्य और सुपात्र है हालांकि उसे आरक्षित नहीं किया गया। सभी महत्वपूर्ण पद ब्राह्मणों

के लिए सुरक्षित थे। सारे मंत्री तो ब्राह्मण होते ही थे। इसकी यहीं इतिश्री नहीं थी। ब्राह्मण अपने वर्ग के लिए लाभ और सत्ता के पद आरक्षित करके ही संतुष्ट नहीं थे। वे जानते थे कि केवल आरक्षण ही प्रर्याप्त नहीं है। गैर–ब्राह्मणस जातियों में ब्राह्मणों के समान योग्यता वाले लोगो द्वारा मुख्य पदों को प्राप्त किए जाने और ब्राह्मणों के आरक्षणों को उखाड़ फैंक देने वाले लोगों के आंदोलन की संभावनाओं को असंभव बनाना भी ब्राह्मणों ने आवश्यक समझा। ब्राह्मणों ने समस्त शासकीय पदों को अपने लिए आरक्षित करने के साथ–साथ शिक्षा पर भी एकाधिकार जमाए रखने के लिए विधान बनाया। जैसा कि पहले भी संकेत दिया जा चुका है, ब्राह्मणों ने विधान बना कर हिंदू समाज के निम्नतर वर्ग के लिए पढाई–लिखाई अपराध घोषित कर दी जिसका उल्लंघन करने पर केवल कठोर ही नहीं अमानुषिक दंड, जैसे अपराधी की जीभ कटवा लेना और उसके कान में पिघलता सीसा डलवा देने की भी व्यवस्था कर दी। यह सच है कि वे आरक्षण अंग्रेजी राज में लागू नहीं है परन्तु यह स्वीकार करना होगा कि वैसे तो मनु के विधान में नियत आरक्षण समाप्त हो गए है, परंतु कई शताब्दियों तक उसके जो लाभ उन्हें मिलते रहे है, उनसे वे अब तक फलफूल रहे हैं। जब मेहनकश जातियां इन आरक्षणों की मांग करती हैं, तो वह कोई नई बात या अजुबा नहीं है। आरक्षण की मांग उन शासक जातियों और संप्रदायवादियों की ज्यादतियों से सुरक्षा की मांग है जो मेहनकश जातियों पर हर क्षेत्र में प्रभुत्व जमाना चाहती हैं, इस मांग के साथ शासक जातियों पर कोई ऐसी घृणित शर्ते नहीं लगाई गई जैसी कि ब्राह्मणों ने अपनी अभिवृद्धि और अपने वर्चस्व की रक्षा के लिए शुद्रों पर लगाई थी, जैसे कि सत्ताहीन जातियों के लिए शिक्षा और संपत्ति प्राप्त करना अपराध था।

कार्यक्षमता के तर्क को जन–कल्याण की दृष्टि से भी देखना होगा। आयरलैंड की संसद के निचले सदन में कैंपबेल बेनरमेन ने कहा था कि अपनी सरकार किसी पराई सरकार से बेहतर होती है। भारत में यह बयान इतना लोकप्रिय हुआ कि यह एक नारे से भी आगे बढ़ गया। यह ब्रह्म वाक्य बन गया। देखनें में यह कथन बेहूदा है। कैंपबेल बैनरमैन अच्छी सरकार की स्वसरकार से तुलना नहीं कर रहे थे। वे सक्षम सरकार के और स्वसरकार के भेद को बता रहे थे। बल्कि दृढ संकल्प सरकार से तुलना कर रहे थे। उन्होनें अपने विपक्षी लार्ड सेलिसबरी के ही मुहावरे का इस्तेमाल किया। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि स्वसरकार अच्छी सरकार होनी चाहिए, वरना उसका ना होना भला। प्रश्न यह है कि अच्छी सरकार कैसी हो? कुछ लोगों की यह धारणा हो सकती है कि स्वसरकार प्रभुसत्तासपन्न सरकार हो सकती है और वह अच्छी सरकार होगी ही। यह एक सबसे बड़ी भ्रांति है, जो अधिकांश

पराधीन देशो में विद्यमान है।, जिन्होंने ऐसी भ्रांति पाल रखी है, वे प्रो. डायसी को पढ़े तो अच्छा होगा। उन्होने इस विषय में कहा है :

"कोई भी प्रभुतासंपन्न शासक विशेष रूप से सांसद द्वारा सत्ता का प्रयोग दो सीमाओं में बंधा है। एक बाह्य तथा दूसरी आंतरिक। ऐसे शासक की बाह्य सीमाओं के कारण यह संभावना होती है या निश्चित होता है कि उसकी प्रजा अथवा उसमें से बहुत सारे लोग उसके आदेशों की अवहेलना कर सकते हैं या प्रतिरोध कर सकते है।"

"वह बाह्य सीमाएं निरंकुश शासकों की भी होती हैं। 18वीं सदी के मध्य में चाहे रोमन सम्राट रहे हों अथवा फ्रांसीसी सम्राट कानून की शक्ल में बहुत सख्त शासक थे। (जैसा कि आजकल रूस के जार सम्राट) प्रभुसत्ता संपन्न शासकों में कानून और कानून बनाने के सारे अधिकार निहित थे। उसका बनाया हुआ प्रत्येक कानून आवश्यक रूप से मानना पड़ता था और उसके राज्य में ऐसी कोई शक्ति नहीं होती थी, जो ऐसे कानूनों को रद्द कर सके, परंतु यह समझना भूल होगी कि वे सदा स्वेच्छा से कानून बनाते थे, चाहे वे कितने ही जितना स्वेच्छाचारी शासक रहे हों।

"शासक सम्राट चाहे जितना निरंकुश हो, अपनी प्रजा तथा प्रजा के कुछ भाग द्वारा उसके आदेश इसी बात पर निर्भर थे कि उन्हें मानने के लिए प्रजा कहां तक तैयार है और वह भी सीमाओं में होती थी। यह बात इतिहास की बदनाम घटनाओं में भी मौजूद है। प्राचीनकाल के सीजर्स में से किसी ने भी रोमन साम्राज्य की पूजा करने के मूल संस्थानों को नष्ट नही किया। सुलतान इस्लाम को नहीं समाप्त कर सका। लुई चौदहवें ने, जो सर्वशक्तिसंपन्न था, नान्ते के आदेश का खण्डन किया, परंतु उसे जान पड़ा कि प्रोटेस्टेंट की महत्ता को समाप्त करना असंभव है और इसी कारण से जेम्स द्वितीय रोमन कैथोलिक धर्म की स्थापना करने से रूक गया। निरंकुश शासक के उत्तराधिकारी को समाप्त कर सकती है, परंतु जैसा की सभी लोग जानते है, आजकल की दुनिया में ब्रिटिश संसद इनमें से कुछ नहीं करेगी। इन सभी विषयों पर जनता के प्रतिरोध की संभावना को देखते हुए कानून बनाना यद्यपि वैध था, तब भी संसद की शक्ति से परे है।

xx xx xx xx xx

सर्वोच्च शक्ति के प्रयोग की भी आन्तरिक सीमा होती है। यहां तक कि निरंकुश शासक भी अपने चरित्र और गुणों के अनुसार अपनी शक्ति का प्रयोग करता है, परंतु वह भी उन परिस्थितियों से सीमित होता है, जिनसे वह घिरा हुआ है। सुल्तान चाहते

हुए भी मुस्लिम जगत के धर्म इस्लाम को नहीं बदल सकता था। परंतु यदि सुल्तान ऐसा करता भी तो उसके लिए आंतरिक सीमाओं के साथ-साथ बाह्य सीमाएं भी सुदृढ़ थी। कभी-कभी लोग यह निरर्थक प्रश्न कर बैठते है कि पोप कोई सुधार लागू क्यों नहीं करता? इसका उत्तर यही है कि पोप क्रांतिकारी मनुष्य नहीं हो सकता और वह जो पोप हो जाता है, उसकी इच्छा क्रांतिकारी बनने की नहीं होती....।"

मैं पहले ही कह चुका हुं कि मेहनतकश जातियां इसी से संतुष्ट नहीं हो सकती कि उनका देश स्वतंत्र हो गया है और उनकी प्रभुसत्ता है। उनके लिए आवश्यक है कि कुछ कदम और बढ़ाए जाए और यह देखा जाए कि देश का संचालन कौन करने जा रहा है। डायसी ने जो कुछ कहा उसकी सच्चाई से कोई इंकार नहीं कर सकता। शासक वर्ग क्या कर सकता है उसमें इतना और जोड़ लिया जाए कि अच्छी सरकार के लिए योग्यता और क्षमता की काफी नहीं है, आवश्यकता ऐसे शासक वर्ग की है, जिसमें कल्याण भावना या डायसी के शब्दों में आंतरिक मर्यादाओं से जो स्वार्थी वर्ग लगाते हैं मुक्ति, कार्यक्षमता सिद्धांत में वर्ग विशेष का स्वार्थ भी समाया होता है तो उससे अच्छी सरकार स्थापित होने की बजाए वह मेहनतकश वर्ग के दमन का साधान बन जाता है।

राज्य के माध्यमों का चयन करते समय, माध्यमों में वर्गभेद के विचारों की अनदेखी नहीं की जा सकती। अच्छी सरकार के लिए यह नितान्तावश्यक है। दुर्भाग्य से इसे महत्व नहीं दिया गया, यहां तक कि उनके द्वारा भी जो खुद को लोकतंत्र का हिमायती कहते हैं। सबसे पहले इसका महत्व कार्ल मार्क्स ने समझा और उन्होनें पेरिस कम्यून के प्रशासन में इसे परखा। यह कहने की आवश्यतका नहीं कि आज सोवियत रूस की सरकार की बुनियाद वही है। भारत में मेहनतकश वर्ग की आरक्षण की मांग उसी सोच पर आधारित है, जिसका संकेत डायसी ने दिया, मार्क्स ने जिसकी वकालत की और रूस ने जिसे अपनाया। मेहनकश जातियों के संरक्षण करने के बारे में केवल उस वर्ग से संबंधित लोगो पर ही भरोसा रखा जा सकता है। यह सोच इतनी महत्वपूर्ण है कि कार्यक्षमता का सिद्धांत उस पर हावी नहीं हो सकता । यदि भारत की शासक जातियां कार्यक्षमता का राग अलापती है, तो उसका कारण उनका यह इरादा काम करता है कि सरकार के तंत्र पर एकाधिकार जमा लिया जाए।

IX

पिछली बहस इतनी लंबी खिंच गई है कि विदेशी पाठक उन मुद्दों को समझ ही न पाया होगा जिनको स्पष्ट करने का हमारा इरादा था। इसलिए उनको समझने के लिए उन्हें एक कड़ी में पिरोना आवश्यक होगा।

भारत में लोकतंत्र की स्थापना के इच्छुक लोगों को जिन मुख्य समस्याओं का समाना करना पड़ सकता है वे हैं – "

(1) भारत में शासक जातियों की स्थिति,

(2) मेहनतकश जातियों के प्रति शासक जातियों का लक्ष्य और उद्देश्य,

(3) मेहनतकश जातियों द्वारा संवैधानिक संरक्षण की मांग का औचित्य, और

(4) शासक जातियों के कांग्रेस से संबंध।

पहले मुद्दे के बारे में तर्क यह है कि भारत में शासक जातियों की स्थिति संसार के अन्य भागो से भिन्न है। इसकी भिन्नताओं को समझ पाना सरल नहीं है, न ही लिखित अभिव्यक्ति उद्देश्य को पूरा कर सकती है। शायद व्याकरण के संयोजक और वियोजक चिन्हों का उदाहरण स्थिति स्पष्ट कर सकता है। संयोजक और वियोजक चिन्हों को समझने में कोई भूल नहीं कर सकता। वियोजक विभाजन करता है, परंतु कही भी संयोजन नहीं करता। संयोजक में दोनों गुण है। यह वाक्य को विभाजित करता है और संयोजित भी। भारत में शासक जातियों और मेहनतकश जातियों के बीच में वियोजक चिन्ह् हैं, जो दोनो को विभाजित करता है। अन्य देशो में संयोजक चिन्ह हैं। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अंतर बहुत निर्णायक है। अन्य देशो में शासक वर्ग में बराबर घट-बढ़ होती रहती है। कोई वर्ग जब उच्च स्थान से हट जाता है, तो नीचे से दूसरा वर्ग इसकी जगह ले लेता है, जो अपना स्तर ऊंचा उठा लेता है। भारत में शासक जातियों के चारों ओर लक्ष्मण रेखा खिंची है जिससे उन्हें जन्म से मृत्यु तक वहीं रहना है। जिसका जन्म इस वर्ग में नहीं हुआ है, वह इस परिधि में घुस ही नहीं सकता। अन्य देशो में ऐसी परिधि नहीं है कि शासक वर्ग और दूसरो के बिच सामाजिक अंतराल हो। उन देशों की मानसिकता में समायोजन भाव है, जिसके कारण शासक वर्ग शासित वर्ग के प्रति इतना हठधर्मी नहीं है। दूसरे शब्दों में अन्य देशों का शासक वर्ग की एक परिधि है। उसकी परंपराए, समाज-दर्शन और दृष्टिकोण मेहनतकश जातियों के प्रति कठोर है। वह परिधि अटूट हैं। उसमें प्रभुता और दासता का भेद गहराई से पैठा हुआ है, जिनके बीच संपन्नता और विपन्नता का स्थाई और स्पष्ट अंतर है। दूसरे शब्दो में, भारत की शासक जातियां केवल असामाजिक ही नहीं हैं, बल्कि यह निश्चित रूप से समाज-विरोधी है।

मेहनकश जातियों की आरक्षण की मांग के पीछे आशय यह है कि शासक जातियों के अधिकारों पर सीमा लगाई जाए, जिसके रहते वे सरकारी तंत्र पर नियंत्रण कर लेते है। शासक जातियां आरक्षण को बदनाम कर रहीं है, ताकि उन लोगो की आवाज को ही दबा दे, जो उस पर जोर दे रहें है। वास्तविकता यह है कि आरक्षण

वही चीज है, जिसे अमरीकी निगरानी और नियंत्रण कहते है, प्रत्येक संविधान में रहना आवश्यक है जिससे लोकतंत्र के शत्रु उस पर काबिज होकर न बैठ जाएं। भारत की मेहनकश जातियों द्वारा की जा रही मांग और अमरीका के निगरानी और नियंत्रण लागू करने में दो मापदंड हो सकते है। पहला यह है कि राजनैतिक संविधान और देश की सामाजिक संस्थाओं के बीच तालमेंल हो। तभी वास्तविक लोकतंत्र बच सकता है। यदि दो देशों के बीच सामाजिक प्रथाएं भिन्न हैं तो वहां निगरानी और नियंत्रण का मापदंड भी भिन्न रखना होगा। उदाहरण के लिए जो देश जात्पात की व्यवस्था से ग्रस्त हैं, वहां उन देशो से भिन्न निगरानी और नियंत्रण की आवश्यकता है जहां सामाजिक लोकतंत्र की भावना मौजूद है। दूसरी बात यह है कि मेहनकश जातियों को सुदृढ़ आधार प्रदान किया जाए, ताकि वे अधिकारसंपन्न शासक वर्ग के दमन से बची रहें। कुछ देशो में मेहनकश वर्गो के लिए वयस्क मताधिकार की काफी हैं, जिससे वे प्रशासन वर्ग से स्वयं सुरक्षित रह सकते हैं। भारत में अन्य देशों के विपरीत शासक जातियां सर्वशक्तिमान और इतनी सर्वव्यापी हैं कि वयस्क मताधिकार के साथ–साथ अन्य उपाय भी आवश्यक हैं, ताकि वे शासक जातियों के शोसन से बची रह सकें। इसके परिप्रक्ष्य में मेहनकश जातियों की आरक्षण की मांग मूलतः अमरीकी संविधान की निगरानी और नियंत्रण व्यवस्था से भिन्न नहीं है। इसलिए किसी विदेशी को उनके विरूद्ध कोई धारणा बनाने से पूर्व इस पर विचार करना चाहिए।

यथार्थ में उपरोक्त संदर्भ में जो बातें कही गई हैं, उनका उद्देश्य कांग्रेस और शासक जातियों के संबंधो को दर्शाना है। उन पर पूरा प्रकाश डाल दिया गया है। इन तथ्यों को ध्यान में रखने पर विदेशी को स्पष्ट हो जाएगा कि कांग्रेस और शासक वर्ग कितना घनिष्ठ संबंध है। उन तथ्यों से स्पष्ट हो जाएगा कि भारत में शासक वर्ग कांग्रेस की टोली में क्यों घुस गया है, और कांग्रेस को सभी लोगो के समर्थन का क्यों प्रचार करता है। संक्षेप में, शासक वर्ग को भली–भांती मालूम है कि सुविधाहीन लोगों का आंदलोन वर्ग–सिद्धांत, वर्गीय हितों और जातीय संघर्ष पर आधारित है। यह एक दिन सुविधासंपन्न वर्ग की कब्र खोद देगा। वे जानते हैं कि सेवक वर्गो की मांग को पटरी से उतारने के लिए राष्ट्रीयता और एकजुटता को खतरे का हौवा खड़ा कर उन्हें बुद्धू बना दिया जाए। वे यह भी समझते है कि कांग्रेस ही ऐसा मंच है, जिसमें शासक वर्ग का हित सुरक्षित है, क्योंकि यदि कोई दल ऐसा है जिसके मंच से अमीर, गरीब, ब्राह्मण, गैर–ब्राह्मण, जमींदार और आसामी, महाजन और कर्जदार के बीच के विवाद पर तुषाराघात करके संघर्ष की ओर से ध्यान बंटाया जा सकता है, तो वह एकमात्र कांग्रेस है। कांग्रेस ही वह मंच है, जहां से देशभक्ति और राष्ट्रीय एकता का झंडा फहरा कर उनका हितसाधन किया जा सकता है।

यदि विदेशी इन विचारों को ध्यान में रखेगा, तो उसे समझ में आ जाएगा कि भारत की मेहनकश जातियां कांग्रेस छाप स्वराज्य से क्यों प्रभावित नहीं हैं। कांग्रेस छाप स्वराज्य उनका क्या उपकार कर सकता है? वे जानते हैं कि कांग्रेस छाप स्वराज्य में उनका भविष्य अंधकारमय बना रहेगा। कांग्रेस छाप स्वराज्य या तो गांधीवाद की परिणति होगी या यह वैसा ही होगा, जैसा शासक जातियां चाहती हैं। यदि यह पहले वाला होगा, तो इसका अर्थ होगा, जैसा चरखा कातना, ग्रामोद्योग, जातपांत का बोलबाला, ब्रह्मचर्य, गोभक्ति और ऐसी ही चीजें। यदि इसे शासक जातियों की कृपा पर छोड़ दिया जाएगा, तो उसका प्रमुख कार्य होगा यह देखना कि मेहनकश जातियों को कैसे दबाया जाए और उनकी सुविधाओं के कैसे बंद किया जाए, जो शिक्षा और उनकी सरकारी सेवाओं के बारे में दी गई हैं।

कुछ लोगों को आशा है कि स्वराज्य के अन्तर्गत काश्तकारी कानूनों, फैक्ट्री अधिनियमों, अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा, नशाबंदी और सड़क तथा नहरों का निर्माण, मुद्रा सुधार, माप-तौल विनियमन, दवाखानों और मेहनकश जातियों के लिए सुविधाओं में सुधार होगा। मुझे इस बात पर पक्का भरोसा नहीं है कि कांग्रेस ऐसे कार्यक्रमों का प्रचार क्यों करती है। वह यह बताना चाहती है कि कांग्रेस ब्रिटिश नौकरशाही से बेहतर है। परंतु एक बार यदि नौकरशाही का सफाया हो गया, तो लोगों के कल्याण के वैसे ही प्रोत्साहन मौजूद रहेंगे? यही प्रश्न है। पहले तो मुझे इस बाबत गंभीर संदेह है कि यह किस प्रकार संभव होगा। फिर दूसरी कोई बड़ी चीज भी नहीं है। आज कोई भी सरकार समाज को आधुनिक रूप दिए जाने के कार्यों की उपेक्षा नहीं कर सकती। इसी के साथ साथ क्या स्वराज्य का अंतिम लक्ष्य सबके कल्याण और सामाजिक उत्थान होगा? मैं मेहनतकश जातियों को बखूबी जानता हूं, इसमें मेहनकश जातियों का कोई दोष नहीं है। वे निश्चित रूप से उस उपदेश का पालन करने को तैयार नहीं है कि "देख पराई चुपड़ी मत ललचाए जी, रूखा सूखा खाय के ठंडा पानी पी।" सदियों से भुख और गरीबी उनकी नियति रही है। परंतु उसके सामने यह कुछ नहीं है, जो अपमान और तिरस्कार वे इस विषैली सामाजिक व्यवस्था के कारण झेलते हैं। उन्हें रोटी नहीं सम्मान चाहिए। यह तभी हो सकता है जब शासक जातियां लुप्त हो जाएं और उनकी भाग्यविधाता न रहें। मेहनकश जातियों के सामने सवाल यह नहीं है कि यह सुधार किया जाए या वह। प्रश्न यह है कि क्या जब भारत की शासक जातियां सरकारी तंत्र पर हावी हो जाएंगी तो वे ऐसी सामाजिक उत्थान के कार्य से अलग कर दी जाएंगी। इस प्रश्न का उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि भारत के भावी संविधान में मेहनतकश जातियों के संरक्षण और सुरक्षा होगी या नहीं । यदि संरक्षण रहे, तो मेहनकश के लिए यह संभव हो सकेगा कि कालांतर में वे

शासक जातियों को उनकी औकात बता दें। यदि संविधान में संरक्षण नहीं रखे गए तो शासक जातियों का मेहनतकश जातियों पर प्रभुत्त जारी रहेगा। इस बिंदु को देखते हुए विदेशियों को यह ध्यान रखना चाहिए कि कांग्रेस का बहु प्रचारित प्रतिनिधित्व स्वरूप विशुद्ध अप्रासंगिक है। कांग्रेस एक प्रतिनिधि संस्था हो सकती है और स्वतंत्रता संग्राम कहे जाने वाले कार्य में लगी हो सकती हैं परंतु इन बातों का अर्थ यह नहीं कि व इस मुद्दे पर फैसला कर लें । यदि कोई लोकतंत्र प्रेमी कांग्रेस का मित्र बनने से पूर्व यह मांग करे कि संविधान की रूपरेखा प्रस्तुत की जाए और इस बात से संतुष्ट हो जाए कि संविधान में ऐसी स्पष्ट और सकारात्मक व्यवस्था को कि मेहनकश जातियों की सुरक्षा, संरक्षण, स्वतंत्रता और खुशहाली का मार्ग प्रशस्त हो।

X

जो विदेशी भारत के मामले में रूचि लेते हैं, उन्हें दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता हैं। पहला वर्ग उन लोगों का है, जो यात्री हैं या पर्यटक हैं, जो बहुत कम समय के लिए भारत आते हैं, जिन्हें भारतीय परिवेश और यहां की राजनीति और समस्याओं का कोई ज्ञान नहीं होता या वे यह जानते है कि भारत की राजनितिक समस्याएं कितनी जटिल है और इन समस्याओं को सुलझाने में विभिन्न राजनैतिक दलों की क्या भूमिका है? दूसरे वर्ग में वे लोग आते है, जो लोकतांत्रिक जनमत के नेता है, जैसे अमरीका के लुई फिशर, किंग्सले मार्टिन, ब्रेल्सफोर्ड और लास्की जिनके ज्ञान को चुनौती नहीं दी जा सकती। मुझे उस समय कोई अफसोस न होता, यदि पूर्वोक्त विचार-विर्मश उन विदेशी पर्यटकों अथवा यात्रियों की सोच को ठीक करने के लिए होता जा बिना सोचे-समझे कांग्रेस के पक्ष में हो गये हैं, परंतु दुर्भाग्य से वैसा ही पक्षपात उन विदेशियों में भी मिलता है जो दूसरी श्रेणी में आते हैं।

कुछ ऐसे भी विदेशी हैं, जो भारत भ्रमण के लिए आते हैं। भारतीय राजनीति की बारीकियों को नहीं समझ सकते। यह समझ में नहीं आता ये विदेशी जो केवल उस आधार पर कांग्रेस का समर्थन केवल उसी रास्ते पर चल कर क्यों करते है, जैसा कि मि. पिकविक ने सैमवेलरा से कहा था कि ज्यादा से ज्यादा भीड़ इकट्ठी करके गला फाड़ो, परंतु सबसे बड़ी कष्टदायक बात यह है कि ब्रिटिश लेबर पार्टी के नेताओं का रवैया जो यूरोप और अमरीका के क्रांतिकारी एवं वामपंथी वर्ग के झंडाबरदार हैं जिनका प्रतिनिधित्व लास्की, किंग्सले, मार्टिन और ब्रेल्सफोर्ड जैसे लोग करते हैं, जैसे अमरीका के "नेशन" और इग्लैंड के "न्यू स्टेट्समेन" के संपादक करते हैं, जो दलित और पिछड़े लोगों के हिमायती माने जाते हैं। ये लोग कैसे कांग्रेस का समर्थन करते है? क्या वे नहीं जानते कि भारत में कांग्रेस और शासक वर्ग एक ही थाली के चट्टे बट्टे हैं? क्या वे नहीं जानते कि भारत में शासक जातियां ब्राह्मण-बनिया धुरी

ही है? ब्राह्मण और बनियों के अतिरिक्त बहुसंख्यक जनता कांग्रेस का झंडा थामती है उसका कांग्रेस की नीति-निर्धारण में कोई योगदान नहीं है। क्या महान व्यक्तित्व वाले उपरोक्त विदेशी यह नहीं समझते कि जिन कारणों से सुल्तान इस्लाम को और पोप कैथोलिक धर्म को नहीं मिटा सके, वैसे ही शासक वर्ग इस मकड़जाल को नहीं तोड़ेगा और वह जब तक ब्राह्मण की श्रेष्टता पर चोट नहीं करेगा तब तक वह ब्राह्मण और सहयोगी जातियों की श्रेष्ठता का पाठ पढ़ाता ही रहेगा जिससे शूद्रों और अछूतों का दमन और तिरस्कार होता है और भारत की आजादी के बाद भी सरकार की वही पवित्र नीति रहती है। क्या वे नहीं जानते कि भारत का शासक वर्ग देश का लोक-मानस नहीं है? वह उनसे न केवल कटा हुआ है, बल्कि खुद भी बच कर चलता है। उसे डर है कि कहीं उसे छूत न लग जाए, क्योंकि ब्राह्मणों ने उल्लू की लकड़ी घूमा रखी है। उसकी सोच और हित उनसे टकराते हैं, जो उनके समाज से बहिष्कृत हैं और दलित दमित के प्रति उसकी कोई सहानुभूति नहीं है। उसके मन में दलितों की आकांक्षओं और दुखदर्द को समझने की संवेदना नहीं हैं, उन्हें शिक्षा और उच्च सरकारी रोजगार दिलाने का उसे अहसास नहीं है। वह उनके सम्मान और स्वाभिमान जगाने वाले आंदोलनों का विरोध करता है। क्या ये विदेशी नहीं जानते है कि भारत के स्वराज्य में 6 करोड़ अछूतों का भाग्य भी अन्तर्ग्रस्त है?

यह कहना असंभव सा प्रतीत होता है कि ब्रिटिश लेबर पार्टी के नेता किंग्सले मार्टिन, ब्रेल्सफोर्ड और लास्की जिनके लेख स्वतंत्रता और प्रजातंत्र के विषय में सभी दबे पिछडे लोगों में प्रेरणा जगाने वाले हैं, वे भारत की इन बातों को नही जानते। तब भी वे भारत के संदर्भ में जब कुछ कहते है, तो कांग्रेस का ही समर्थन करते हैं। वे शायद ही कभी अछूतों की समस्या पर मुंह खोलते हों, जिस पर सभी प्रगतशील और प्रजातंत्रवादियों का ध्यान जाना चाहिए था। इन विचारों द्वारा केवल कांग्रेस कार्यकलापों पर ध्यान जाना, भारत के राष्ट्रीय जीवन के अन्य तत्वों की उपेक्षा करना, इस बात को स्पष्ट करता है कि उन्हें गुमराह किया गया है। यदि कांग्रेस राजनैतिक प्रजातंत्र के लिए लड़ाई लड़ती होती, तो कांग्रेस को समर्थन देना ही भली भांती तब समझा जा सकता था, परंतु क्या ऐसा है? सब जानते है कि कांग्रेस केवल राष्ट्रीय आजादी की लड़ाई लड़ रही है, राजनैतिक प्रजातंत्र में उसकी कोई दिलचस्पी नहीं है। वह पार्टी जो भारत में राजनैतिक प्रजातंत्र की लड़ाई लड़ रही है, वह केवल अछूतों की पार्टी है, जिसे आशंका है कि कांग्रेस की आजादी की यह लड़ाई यदि कामयाब हो जाती है तो इसका अर्थ होगा शक्तिशाली वर्ग को ही स्वतंत्रता मिलेगी और वह अधिक शक्ति के साथ कमजोरों और दलितों को, तब तक दबाएगा, जब तक कि उनकी सुरक्षा के लिए संवैधानिक संरक्षण न दिया जाएगा। यह वही दलित वर्ग है, जिसे

उन प्रगतिशील नेताओं की सहायता की आवश्यकता है। परंतु उनकी सहानुभूति एवं समर्थन की वर्षो से प्रतीक्षा अछूतो के लिए व्यर्थ साबित हुई। यूरोप और अमरीका के उन प्रगतिशील एवं वामपंथी नेताओं ने यह जानने की परवाह नहीं की कि कांग्रेस के पीछे कौन शक्ति काम कर रही है।

अनभिज्ञ और लापरवाह व्यक्ति भले ही कांग्रेस की भावना को न जानता हो, परंतु वास्तविकता यह है कि वे वामपंथी और प्रगतशील नेता आंख मूंद कर उस कांग्रेस का समर्थन करते हैं, जो पूंजीपतियों, जमींदारों, सूदखोरों तथा प्रतिक्रियावादियों द्वारा चलाई जा रही है– केवल इसलिए कि कांग्रेस अपने कार्यकलापों द्वारा स्वतंत्रता का गौरान्वित नाम लेकर चिल्ला–चिल्ला कर प्रचार करती हैं। स्वतंत्रता की सभी लड़ाईयां समान नैतिक स्तर की नहीं हुआ करती, क्योंकि इन लड़ाइयों के पीछे स्वतंत्रता की लड़ाई का सदैव एक सा ध्येय नहीं हुआ करता। इग्लैंड के इतिहास से कुछ उदाहरण लीजिए। जॉन के विरूद्ध बेरन का विद्रोह आजादी की लड़ाई कहा जा सकता है, परंतु क्या कोई लोकतंत्रवादी आज के युग में उसका समर्थन कर सकता है? क्या केवल इसलिए इंगलैंड के किसान विद्रोह का समर्थन किया जा सकता है कि उसे स्वतंत्रता का नाम दे दिया गया था? ऐसा करना स्वतंत्रता के नाम पर उठाई गई झूटी पुकार पर आगे बढ़ने के समान होगा। ऐसा अपरिवक्व व्यवहार क्षम्य होता, यदि वह किसी मंद बुद्धि व्यक्ति द्वारा किया गया होता जिसे यह निर्णय करना न आता हो कि जीने की स्वतंत्रता और दमन करने की स्वतंत्रता में क्या भेद है। परंतु सर्वश्री लास्की, किंग्सले मार्टिन, बेल्सफोर्ड लुईफिशर जैसे लब्धप्रतिष्ठित प्रजातंत्र संरक्षकों के प्रगतशील वामपंथी अनुयाइयों को इसके लिए क्षमा नहीं किया जा सकता।

जब उनसे यह प्रश्न पुछा जाता है कि वे वास्तविक प्रजातंत्र के लिए लड़ने वाली पार्टियों का समर्थन क्यों नहीं करते, तो वे पलट कर प्रश्न करते हैं कि क्या भारत में अन्य ऐसी पार्टीयां हैं, जो वास्तविक प्रजातंत्र के लिए लड़ रही है? यदि ऐसी पार्टियां है तो अखबार वाले उनके कार्यकलाप क्यों नहीं प्रकाशित करते? जब कहा जाता है कि प्रेस कांग्रसी है, तब पुनः प्रश्न उठता है कि विदेशी अंग्रेजी अखबार वाले क्यों नहीं प्रकाशित करते? मैंने पहले ही स्पष्ट कर दिया है कि विदेशी अखबार वालों से कोई आशा नहीं की जा सकती । भारत में जो विदेशी समाचार एजेंसियां हैं, वे भारतीय समाचार एजेंसियों से अधिक अच्छी नहीं कही जा सकती। वास्तव में वे अधिक अच्छी एजेंसिया हो नहीं सकतीं । भारत में जो विदेशी पत्रकार हैं वे अधिाकतर भारतीय है और विदेशी बहुत कम। विदेशी पत्रकारों के रूप में ऐसे भारतीयों का चुनाव किया जाता है, जो अधिकतर कांग्रेस के पिट्ठू होते है। ये विदेशी पत्रकार जो विदेशी ही हाते है, दो प्रकार के होते हैं। यदि अमरीकी हैं तो अंग्रेजो के

बिल्कुल खिलाफ हैं तथा कांग्रेस के पक्ष में हैं। भारत में कोई राजनैतिक पार्टी यदि पागलों की तरह अंग्रेजों का विरोध नहीं करती, तो उसके प्रति उनको कोई दिलचस्पी नहीं होती। वे लोग, जो कांग्रेस में नहीं हैं, गवाह हैं कि वर्ष 1941-42 में भारत आए अमरीकी पत्रकारों को समझाना कितना कठिन था कि कांग्रेस की अकेली पार्टी नहीं है, परन्तु उन्होनें दूसरी पार्टीयों को घास तक नहीं डाली। बहुत बाद में अहसास हुआ, तब उन्होंने या तो कांग्रेस को गलत सिद्धांतों वाली संस्था कह कर निंदा की अथवा भारतीय राजनीति में दिलचस्पी लेना ही बंद कर दिया। उन्होंने भारत की अन्य राजनैतिक पार्टीयों में कभी दिलचस्पी नहीं दिखाई और न कभी उनके विचारों को समझने की चिंता की और अंग्रेज संवाददाताओं का भी यही हाल है। वे भी केवल इस प्रकार की राजनीति में रूचि लेते हैं जो घोर ब्रिटेन विरोधी है। वे उन पार्टियों को नहीं पूछते, जो सुरक्षित लोकतंत्र की हामी हैं। परिणाम यह है कि विदेशी पत्रकार भारतीय राजनीति के संबंध में उसी प्रकार समाचार प्रकाशित करते है, जिस प्रकार के भारतीय अखबार करते है।

पत्रकार हों या न हों, क्या उन प्रगतिशील विचारकों का यह कर्तव्य नहीं हो जाता कि संसार के किसी भी भाग में जहां कहीं सही प्रजातंत्र के लिए लड़ाई लड़ी जा रही हो, तो अपने विचारों के अनुकूल तत्वों को प्रात्साहित करें। उनसे संपर्क कायम रखें और देखें कि सब जगह प्रजातंत्र फैले । दुर्भाग्य की बात है कि अमरीकी और इंगलैंड के प्रगतिशील विचारक उस वर्ग को भूल गए हैं, जिसकी सहायता करना उनका कर्त्तव्य है, इसके बजाए वे भारतीय अनुदारवादियों को प्रोत्साहन दे रहे हैं। जो लोग स्वतंत्रता के नारे का दुरूपयोग करते हैं, वे ऐसा करके अपनी करनी पर पर्दा डालते हैं और संसार को गुमराह करते है।

कांग्रेस द्वारा फैलाया गया यह कोहरा छंट जाएगां और विदेशी अनुभव करने लगेंगे कि भारत में प्रजातंत्र और स्वायत्त शासन, तब तक वास्तव में स्थापित नहीं हो सकता, जब तक कि स्वतंत्रता का लाभ न मिले। परंतु यदि वे कांग्रेस की वास्तविकताओं तथा उसके इरादों की बिना परीक्षा लिए खोखले नारों के आधार पर आंख मूंद कर कांग्रेस का समर्थन करते रहे, तो मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि वे भारत के मित्र होना तो दूर रहा भारतीय जनता की स्वतंत्रता के लिए वे निश्चित रूप से खतरा है। यह अफसोस की बात है कि वे उस उत्पीड़क को पहचानने की कोशिश नहीं करते, जो स्वतंत्रता का तर्क इसलिए लेता है कि वह अपने उन अधिकारों को पुनः प्राप्त करना चाहता है, जिससे वह उन दलित वर्गों को और दबा सके, जो उसके दमन से छुटकारा पाना चाहते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति की शीघ्रता में उन्हें यह समझने का अवसर नहीं कि कांग्रेस का पक्ष लेकर वे जो कुछ करना चाहते हैं, उससे भारत

प्रजातंत्र के लिए सुरक्षित न रह सकेगा बल्कि तानाशाही करने की पूरी छूट मिल जाएगी। क्या उनसे यह कहना आवश्यक है कि कांग्रेस का समर्थन करना तानाशाहों को दूसरों पर शिंकजा कसने की आजादी देना? शोषित और पीड़ित वर्गों के समर्थकों के रूप में अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए उन्हें कांग्रेस के प्रति अपने दृष्टिकोण पर पुनर्विचार करना चाहिए।

अनुक्रमणिका

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
DR. AMBEDKAR FOUNDATION

☎ 23320571
23320589
23320576
FAX : 23320582

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय
MINISTRY OF SOCIAL JUSTICE AND EMPOWERMENT
भारत सरकार
GOVERNMENT OF INDIA

निदेशक
DIRECTOR

15, जनपथ,
15, JANPATH
नई दिल्ली - 110001
NEW DELHI-110001

दिनांक – 31.10.2019

रियायत नीति (Discount Policy)

सक्षम प्राधिकारी द्वारा यह निर्णय लिया गया है कि पहले के नियमों के अनुसार CWBA वॉल्यूम के संबंध में रियायत नीति (Discount Policy) जारी रखें। तदनुसार, CWBA इंग्लिश वॉल्यूम (डिलक्स संस्करण–हार्ड बाउंड) के एक पूर्ण सेट की कीमत और CWBA हिंदी वॉल्यूम (लोकप्रिय संस्करण–पेपर बाउंड) के एक पूरे सेट की कीमत निम्नानुसार होगी :

क्र.सं.	सीडब्ल्यूबीए सेट	रियायती मूल्य प्रति सेट
	अंग्रेजी सेट (डिलक्स संस्करण) (वॉल्यूम 1 से वॉल्यूम 17)– 20 पुस्तकें।	रू 2,250/–
	हिंदी सेट (लोकप्रिय संस्करण) (खंड 1 से खंड 40 तक)– 40 पुस्तकें।	रू 1073/–

2. एक से अधिक सेट के खरीदारों को सेट की मूल लागत (Original Rates) यानी रू 3,000/–(अंग्रेजी के लिए) और रू 1,430/–(हिंदी के लिए) पर छूट मिलेगी जो कि निम्नानुसार है।

क्र.सं.	विशेष	मूल लागत पर छूट का प्रतिशत
	रू 1000/– रुपये तक की पुस्तकों की खरीद पर	10%
	रू 1001–10,000/– रुपये तक की पुस्तकों की खरीद पर	25%
	रू 10,001–50,000/– रुपये तक की पुस्तकों की खरीद पर	33.3%
	रू 50,001–2,00,000/– रुपये तक की पुस्तकों की खरीद पर	40%
	रू 2,00,000/– से ऊपर की पुस्तकों की खरीद पर	45%

3. इच्छुक खरीदार प्रतिष्ठान की वेबसाइट : www.ambedkarfoundation.nic.in पर विवरण के लिए जा सकते हैं। संबंधित CWBA अधिकारी / पीआरओ को स्पष्टीकरण के लिए दूरभाष नंबर 011–23320588, पर कार्य दिवसों में पूर्वाह्न 11:30 बजे से शाम 5:30 बजे तक संपर्क किया जा सकता है।

(देबेन्द्र प्रसाद माझी)
निदेशक, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय

ISBN (सेट) : 978-93-5109-149-3

रियायत नीति के अनुसार
सामान्य (पेपरबैक) खंड 01-40
के 1 सेट का मूल्य : ₹ 1073/-

प्रकाशक :

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय
भारत सरकार
15, जनपथ, नई दिल्ली – 110 001
फोन : 011–23320571
जनसंपर्क अधिकारी फोन : 011–23320588
वेबसाइट : http://drambedkarwritings.gov.in
ईमेल : cwbadaf17@gmail.com